पंचरत्न

अनुवादक एवं संपादक
आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

कृति	:	पंचरत्न
आशीर्वाद	:	श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज
अनुवादक एवं संपादक	:	आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज
प्रतियाँ	:	1000
मुद्रक	:	अरिहंत ग्रॉफिक्स
		मो. 9958819046, 9811021402
प्राप्ति स्थान	:	अतिशय क्षेत्र जम्बूस्वामी तपोस्थली क्षेत्र, बौलखेड़ा, कामां, राज.
	:	अतिशय क्षेत्र जयशांतिसागर निकेतन, मंडौला, गाजियाबाद, उ.प्र.
	:	निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति, दिल्ली

पुण्यार्जक

श्री मुकेश जैन श्रीमती पिंकी जैन, आयुष जैन, श्रेया जैन

अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली

सम्पादकीय

–आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुत ग्रंथ ''पंचरत्न'' पाँच रत्नों का एक संग्रह ग्रंथ है। यह कोई स्वतंत्र कृति नहीं है। पाँच ग्रंथों का संग्रह हाने से ही इस ग्रंथ का नाम ''पंचरत्न'' प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम ग्रंथ है अमोघवर्ष कृत प्रश्नोत्तर रत्नमालिका। द्वितीय ग्रंथ है महामृत्यु महोत्सव एवं प.पू. आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी कृत रत्नकरण्डक श्रावकाचार का षष्ट्म सल्लेखनाधिकार। तृतीय ग्रंथ है पूज्य मुनिराज श्री पद्मसिंह जी कृत ज्ञानसार। चतुर्थ रत्न के रूप में परमात्म स्वरूप व परमानंद स्तोत्र को लिया गया है। अंत में पंचम रत्न के रूप में चारित्र चूड़ामणि आचार्य कुंथुसागर जी कृत ''लघु शांति सुधा सिंधु'' को संकलित किया गया है। लोक व्यवहार में रत्न पाषाण खण्डों का मूल्य, ताम्र, रजत व स्वर्णादि धातु की अपेक्षा कई गुना अधिक होता हैं ये लोक में रत्न सर्वश्रेष्ठ वस्तु को ही कहा जाता ह। नीतिकार जल, अन्न ओर सुभाषितों को रत्न की संज्ञा देते हैं। एक नीतिकार ने कहा भी है–

''पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञा विधीयते॥''

धर्मात्मा श्रावक-सच्चे देव, शास्त्र व गुरु को ही परम गुरु मानता है। यथोक्तं–''देव शास्त्रगुरुरत्न शुभ तीन रतन करतार।।' राजा, महाराज, महामण्डलीक, अर्द्धचक्री (नारायण, प्रतिनारायण) बलभद्र व चक्रवर्ती आदि मणि, काकड़ी, दण्ड, असि धनु, चर्म, चक्र आदि सात अचेतन व हाथी, घोड़ा, पुरोहित, रानी आदि सात चेतन रत्न मानते हैं। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने कहा भी है–

''सेनापति स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्च,
स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणि का-पुरोधाः।
छत्रासि - दंडपतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।7।।

(नंदीश्वर भक्ति) समवशरणाष्टक

शास्त्रों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को भी रत्न कहा है तथा इस रत्नत्रय को धारण करने वाले रत्न ही नहीं परम रत्न हैं। प्रस्तुत ग्रंथ

पंचरत्न में पाँच शास्त्रों को रत्नवत् मानकर ही ग्रहण किया है। वास्तव में हैं भी परमार्थ भूत रत्नत्रय का कारण। अत: ''पंचरत्न'' नाम सार्थक ही है आगे इन रत्नों के (ग्रंथों व ग्रंथकारों के) सम्बन्ध में प्राप्त/उपलब्ध जानकारी को संक्षेप में उद्धृत करते हैं।

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका–यह नीति परक श्रावक व श्रमणोपयोगी एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह अत्यन्त लघुकाय होते हुए भी भाव की अपेक्षा वृहद् है। इसमें यथा नाम तथा विषय वस्तु है। अत: प्रश्नोत्तर रत्नमालिका नाम सार्थक ही है। इस ग्रंथ में कुल 29 (उन्नतीस) श्लोक हैं। इस ग्रंथ को बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, महिला व पुरुष कोई भी पढ़ सकता है। विषय रुचिकर है। इसकी कई बार कक्षाएँ भी ली हैं। अनेक भव्य महानुभावों ने इसे कण्डस्थ भी किया है। यद्यपि ये विषय एक दिन में भी कण्ठस्थ आसानी से किया जा सकता है फिर भी अपनी क्षमतानुसार इसे कण्ठस्थ कर ही लेना चाहिए। इस ग्रंथ के रचियता आचार्य अमोघवर्ष ऋषि राज हैं, उनका भी संक्षिप्त जीवन परिचय निम्न प्रकार है।

1. सम्राट अमोघवर्ष (प्रथम) का जन्म ई.स. 804 में उस समय हुआ था जब उनके पिता गोविन्द राय (तृतीय) उत्तरा पथ की अपनी एक विजय यात्रा से लौटते हुए नर्मदा नदी के किनारे ''श्री भक्त'' नामक स्थान पर छावनी डाले ठहरे थे। इनका बचपन का नाम बाछणराय था। ई.सं. 815 में इनके पिता की मृत्यु हो गई, तब इनकी उम्र 10-11 वर्ष के करीब थी। तब मान्यखेट नगर का राज्य इन्हें प्राप्त होना था किन्तु गुर्जर देश के शासक, इन्द्रराज के पुत्र एवं उत्तराधिकारी राजा कर्कराज ने अपने हाथ में संभाल लिया। कर्कराज अमोघवर्ष के चाचा भी थे। अत: इन्होंने मोघवर्षकाई.सं. 821 में विधिवत् राज्याभिषेक किया। तब तक कर्कराज संरक्षक, सुयापेग्य व सक्षम अभिभावक बनकर भी रहा। कर्कराज की भांति ही साम्राज्य का महान सेनापति जैनवीर बंकेरयस पूर्णतया स्वामी भक्ति व समर्पण के साथ सहयोगी रहा। इन दोनों ने साम्राज्य को स्वचक्र और परचक्र के समस्त उपद्रवों से सुरक्षित रखने का सफल प्रयत्न किया। शक सं. 757 में ध्रुवराज को जीतकर अपने राज्य में लि लिया और उन्होंने अपना राज्य समस्त राष्ट्रकूट में फैलाया था। नृपतुंग, शर्मवर्म, अतिशय-धवल, महाराज-शधड वीर नारायण, श्री बल्लभ, बल्लभराय आदि विरुदावली सहित इस राष्ट्रकूट सम्राट का जैनधर्म के पोषक एवं भक्त महान् सम्राटों में उल्लेखनीय स्थान

है। अमोघवर्ष सम्राट का काल 815 से 878 तक माना जाता हैं अरब यात्री सुलेमान सौदागर के अनुसार (851 ई.) उस काल में संसार भर में सर्वमान् सम्राट भारत का दीर्घायु बलहरा (बल्लभ राय अमोघवर्ष) चीन का सम्राट, बगदाद का खलीफा, रोम (तुर्की) का सुल्तान यह चार ही थे। तत्कालीन सौदागर सुलेमान कहता है कि अमोघवर्ष राजा के राज्य में विपुल सम्पत्ति थी। वहाँ चोरी व ठगी कोई जानता भी नहीं था। इलइद्रिसि लिखता है कि ''राष्ट्रकूट राज्य अतिविस्तृत व घनाबवसा हुआ था। व्यापार व कृषि चरम विकास पर थे। राजा प्रजा सभी न्याय प्रिय व ईमानदार थे।'' अबुर्जद भी लिखता है–''....संपूर्ण भारतवर्ष का सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं प्रतापी नरेश है। आचार्य जिनसेन को अपना धर्मगुरु व राज्यगुरु मानता था। ई. 837 .... आचार्य जिनसेन ने 60,000 श्लोक प्रमाण जयधवला की टीका पूर्ण की। पार्श्वाभ्युदय, आदिपुराण आदि ग्रंथों की रचना की। गुणभद्राचार्य ने भी इन्हीं राजा के प्रश्रय में ... आत्मानुशासन एवं जिनदत्त चरित्र की रचना की। उग्रादित्याचार्य ने ''हिताहित'' अध्याय शीर्षक में मद्य, मांस, मधु का वैज्ञानिक विवेचन किया तथा इन्हीं राजा के प्रश्रय मे आयुर्वेद के महान् ग्रंथ ''कल्यणकारक'' ग्रंथ की रचना की तथा महावीराचार्य ने ''गणित सार संग्रह'' की रचना की। यापनीय संघ के जैनाचार्य शाकटायान पाल्यकीर्ति ने ''शब्दानुशासन'' नामक व्याकरण ग्रंथ एवं ''मोघवृत्ति'' नाम की टीका लिखी। अमोघवर्ष ने भी ''कवि राजमार्ग'' नामक छंदालंकार ग्रंथ एवं ''रत्नमालिका'' नामक नीति का ग्रंथ रचा। कोन्नूर गुफा आदि में विद्यमान लेखों से इनके दान की कीर्ति जानी जा सकती है। ये बाटग्राम के मठ में जाकर ध्यान साधना करते थे। 876 में अपने पुत्र ''कृष्णराज'' को राज्य भार सौंपकर विरक्त हो जिनदीक्षा ले 876 से 880 के मध्यम उत्तम समाधि को प्राप्त किया।

2. आचार्य समंतभद्र स्वामी जैन दर्शन की निर्मल एवं अक्षुण्ण परम्परा में एक ऐसे महामनीषी हुए जिनकी नैयायिक व तार्तिक बुद्धि, विद्वत्ता व साध ना का कोई मुकाबला नहीं कर सका। इनके बारे में कहा जाता है (ऐसी किंवदन्ती है) कि ये भविष्य में तीर्थंकर बनेंगे। इन्होंने रत्नकरण्डक श्रावकाचादादि आदि अनेक महनीय, गूढ़ ज्ञान से परिपूर्ण, असाधारण ग्रंथों की रचना की है। प्रस्तुत ग्रंथ पंचरत्न में मृत्यु महोत्सव के साथ रत्नकरण्डक श्रावकाचार के षष्टम् सल्लेखना अधिकार को लिया गया है जिससे भव्य

जीव अपनी समाधि की विधिपूर्वक साधना कर सकें। प्रथम जैन संस्कृत कवि एवं स्तुतिकार वादी, वाग्मी, गमक, तार्किक, वादीभ शार्दूल (वादीरूपी हाथियों में शार्दूल की तरह) अनुपम योगी, महान प्रभावक संत हुए। इनका जन्म उरगपुर (त्रिरचनापल्ली) के नागवंशी चोल नरेश कीलिक वर्मन के ''शांति वर्मन'' नामक क्षत्रिय कुलोत्पन्न कनिष्ठ पुत्र थे। राजबालिक थे। राजपुत्र/युवराज थे। राज्य कार्य से बचपन की पूर्णता होते-होते ही संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, अध्ययन-अध्यापन साधना के द्वारा अपने गुरु के साथ विहार करते हुए जिनधर्म की प्रभावना करते रहे। किन्तु कर्म किसी को नहीं छोड़ते। तीर्थंकरादि महापुरुष भी उन कर्मों से नहीं बचे, कर्मों को पराधीनता को स्वीकार करना ही पड़ा है। आचार्य समंतभद्र स्वामी को पूर्वपाप कर्मोदय से भस्मक व्याधिरोग हो गया तब उन्होंने गुरुजी से समाधि की प्रार्थना की किन्तु उनके गुरु महाराज ने समाधि का निषेध कर दिया और उनके भविष्य के संबंध में जानकर लिंग छेदने की आज्ञा दे दी। तब वे पुण्यवर्धन नगर में बौद्ध भिक्षु बनकर, दशपुर में परिव्राजक और अंत में दक्षिण देशस्थ काञ्ची नगर में शैव तापसी बनकर शिवकोटि राजा के द्वारा निर्मित शिवालय में रहते हुए चढ़े नैवेद्य को भोगने लगे। भेद प्रकट होने पर स्वंयभूस्त्रोत के द्वारा शिवलिंग में से चन्द्रप्रभ की प्रतिमा प्रकट हुई जिससे प्रभावित हो राजा शिवकोटि ने भी जिनदीक्षा ग्रहण की। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने भस्मक व्याधि रोग के दूर होने पर पुनर्दीक्षा लेकर जैन धम की महती प्रभावना की। स्थान-स्थान पर राज्य सभाओं में जाकर जैनधर्म कावाद-विवाद जीतकर, विजय का डंका बजाया, धर्म ध्वजा फहराई। आचार्य समंतभद्र स्वामी की ग्यारह कृतियाँ सुप्रसिद्ध हैं-1 वृहद् स्वयंभू स्तोत्र, 2. स्तुति विद्या (जिनशतकम्) 3. देवागम स्तोत्र (आप्त मीमांसा), 4. युक्त्यानुशासन (न्याययुक्ति व तर्कों से युक्त ग्रंथ), 5. तत्त्वानुशासन, 6. जीवसिद्धि, 7. प्रमाण पदार्थ, 8. कर्मप्राभृत टीका, 9. गंधहस्ति महाभाष्य (तत्त्वार्थ सूत्र की टीका), 10. प्राकृत व्याकरण, 11. रत्नकरण्डक श्रावकाचार (शाश्वत सुखाबह), 12. षट्खण्डागम के आद्य पाँच खण्डों पर भी टीका लिखी (ऐसा कुछ मनीषी आचार्य मानते हैं)। किन्तु वह टीका एवं गंधहिस्त महाभाष्य आदि ग्रंथ वर्तमान काल में उपलब्ध नहीं हैं।

तृतीय रत्न में परमात्मस्वरूप व परमानंद स्तोत्र को ग्रहण किया है इसमें आध्यात्मिक विद्या की प्रधानता है, पढ़ने से, चिंतन से, मनन से व ध्यान

करने से परमानंद की अनुभूति होती है। इस ग्रंथ के रचयिता कौन आचार्य श्री हैं? उनका जीवनवृत्त क्या है? उन्होंने अपने जन्म में किस क्षेत्र या माता-पिता की कुक्षि को पवित्र किया? दीक्षा कब और कहाँ ली? इत्यादि प्रमाणिक विवरण हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है। यह स्तोत्र मोक्षमार्गी व आत्महितेच्छु भव्य जीवों को नित्य ही पठनीय, चिन्तनीय, मननीय है इसे एकांत में आँख बंद करके मंद-मंद स्वर में गाने से, अर्थ हो हृदयांगम करने से अनुपम आनंद भी अनुभूति होती है। यह स्त्रोत अन्तर्यात्रा में सोपानवत् है।

चतुर्थ रत्न के रूप में प.पू. मुनिराज आचार्यवर श्री पदमसिंह मुनिराज कृत ''णाणसार'' नामक ग्रंथ को सम्मिलित किया है, यह ध्यान का ग्रंथ है। इसमें प्राकृत भाषा में 63 गाथाएँ है। ध्यान के लिए उचित स्थान, आसन, काल का वर्णन करने के साथ-साथ आर्त्त-रौद्र-धर्म व शुक्ल ध्यानों का विवेचन है। चारों प्रकार के ध्यान का स्वरूप व फल का विवेचन है, धर्म ध्यान का भी विवेचन है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेद व स्वरूप का भी कथन है। सविकल्प व निर्विकल्प ध्यान का वर्णन है। योग व प्राणायाम का भी उल्लेख है, स्वर ज्ञान, नाड़ी संचरण के बारे में भी संक्षेप में बताया गया है। मुनिराज श्री पद्मसिंह जी ने विक्रम सं. 1086 में श्रावण शुक्ला नवमी के दिन अम्बक नगर में इस ग्रंथ की रचना की। इतना ही इनका जीवनवृत्त प्राप्त होता है, विस्तार से जीवनवृत्त कहीं नहीं मिला।

पंचम रत्न के रूप में ''लघुशांति सुधा सिंधु'' को ग्रहण किया है। इसमें आचार्य श्री कुन्थुसागर जी ने देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति, आत्मध्यान, अहिंसा धर्म, परोपकार, हिंसा का स्वरूप, भेद, पुण्य, त्याग की प्रेरणा, क्रोध , मान, माया, लोभ का स्वरूप, कषायोद्रेक का फल कुसंगति के त्याग की प्रेरणा, सत्संग से लाभ, सत्संग की प्रेरणा, सत्संग का स्वरूप, सच्चे गुरु की सेवा का फल एवं लघु शांति सुधा सिंधु पढ़ने का फल इत्यादि विषयों का विवेचन किया। चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज अनुपम तपस्वी चारित्र शिरोमणि त्यागमूर्ति योगी अतिशय आचार्य श्री शांतिसागर जी के सुयोग्य शिष्य थे। आपने स्वपर, हितकर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़ आदि भाषाओं में ग्रंथ रचना की। आचार्य श्री कुंथुसागर जी का जन्म कर्नाटक प्रांत के बेलगांव जनपदस्थ ऐनापुर नगर में श्रीमान सातप्पा व श्रीमती सरस्वती जी के यहाँ वी.नि.सं. 2420 में हुआ था। आपका जन्म नाम रामचंद्र व जाति चतुर्थ थी। आप उत्तम कोटि के कषाय विजयी व परीषहजयी

उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् थे।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ समस्त त्यागी व्रती व्रतियों को यथायोग्य प्रति नमोस्तु, सुसमाधिरस्तु शुभाशीष, प्रकाशक श्री निर्ग्रंथमाला समति को व अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का श्रुत भक्ति में सही सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावकों को धर्मवृद्धि शुभाशीष।

प्रस्तुत ग्रंथ ''पंचरत्न'' के अनुवाद व सम्पादक कार्य में मुझ अल्पज्ञ साधक द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हों तो अभेद रत्नत्रयधारी विज्ञ जान मुझे क्षमा करते हुए सुझाव देने का अनुग्रह करें तथा सुधी विनयी पाठकगण, स्वाध्याय प्रेमी महानुभाव ग्रंथ का श्रद्धा व भक्तिपूर्वक आद्योपांत स्वाध्याय करें। धर्मात्मा की दृष्टि हंसवत् होती है। जैसे हंस दूध को ग्रहण करता है, पानी को छोड़ देता है या मोती चुगता है कंकड़ पत्थर नहीं। वैसे ही धर्मानुरागी भव्य जीव गुणग्राही दृष्टि से ही स्वाध्याय करें, दोषों को छोड़ने की ही दृष्टि रखें। प्राणी मात्र का कल्याण हो, धर्मवृद्धि हो, सभी शाश्वत सुख व शांति को प्राप्त करें। ऐसी पुनीत भावना के साथ....

''अलमति विस्तरेण''

जैनं जयतु शासनं

श्री शुभमिति फाल्गुन शुक्ला 5
संवत 2072, वी.नि.सं. 2541-42
13 मार्च 2016
श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सवे

जिन चरणाम्बुज चंचरीक
कश्चिदलपज्ञ निर्ग्रन्थ सूरि
ॐ ह्रीं नमः
अशोक नगर, दिल्ली

आचार्य अमोघवर्ष ऋषिकृत

1- iz'uksÙkj jRuekfydk

☞ **प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां वक्ष्ये।**
नागनरामरवंद्यं, देवं देवाधिपं वीरम्।।1।।

अन्वयार्थ :

नागनरामरवंद्यं	असुर, नर और सुर से वन्दनीय
देवाधिपं देवं	देवों के अधिपति देव, (देवाधिदेव) को
वर्धमानं	वर्धमान
वीरम्	महावीर को
प्रणिपत्य	प्रणाम करके (मैं)
प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां	प्रश्नोत्तर रत्नकालिका को
वक्ष्ये	कहूँगा

☞ **कः खलु नालं क्रियते, दृष्टादृष्टार्थ साधनपटीयान्।**
कण्ठस्थितया विमल-प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया।।2।।

अन्वयार्थ :

दृष्टादृष्टार्थ	दृष्ट और अदृष्ट
साधनपटीयान्	पदार्थों की साधना करने में प्रवीण
खलु कः	निश्चय ही ऐसा कौन होगा?
विमल	(जो) निर्दोष
प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को
कण्ठस्थितया	कण्ठ में धारण करके
नालं क्रियते	अपने को विभूषित नहीं करेगा

☞ **भगवन्! किमुपादेयं, गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।**
को गुरुरधिगततत्त्वः, सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम्॥3॥

अन्वयार्थ :

भगवन्	हे भगवन्!
उपादेयं किम्?	ग्रहण करने योग्य क्या है?
गुरुवचनं	गुरु के वचन
हेयं च–	और त्यागने योग्य
अपि किम्?	भी क्या है?
अकार्यम्	अकार्य
कः गुरु?	गुरु कौन है?
अधिगत तत्त्वः	वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता
सततम्	निरन्तर
सत्त्वहिताभिः	जो प्राणियों के हित में
उद्यतः	तत्पर हैं

☞ **त्वरितं किं कर्त्तव्यं, विदुषां संसार-सन्ततिच्छेदः।**
किं मोक्ष-तरोर्बीजं, सम्यग्ज्ञानं क्रिया-सहितम्॥4॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
विदुषां	विद्वानों को
त्वरितं	शीघ्र
किम् कर्त्तव्यम्?	क्या करना चाहिए?
संसार सन्ततिः	संसार परम्परा का
च्छेदः	नाश
मोक्षतरोः	मोक्ष रूपी वृक्ष का
बीजं किम्?	बीज क्या है?
सम्यग्ज्ञानं सहितं	समीचीन ज्ञान के साथ
क्रिया	आचरण करना

☞ **किं पथ्यदनं धर्मः, कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।**
कः पण्डितो विवेकी, किं विषमवधीरिता गुरवः॥5॥

अन्वयार्थ :

भगवन्	हे भगवन!
पथि	मोक्षमार्ग में
अदनं किम्?	पाथेय (रास्ते का कलेवा) क्या है?
धर्मः	समीचीन धर्म
इह	इस संसार में
कः शुचिः	कौन पवित्र है?
यस्य	जिसका
शुद्धं मानसम्	मन शुद्ध है
पण्डितः कः	पण्डित कौन है?
विवेकी	विवेकी पुरुष
विषम किम्	विष क्या है?
गुरवः	गुरु का
अवधीरिता	अपमान (तिरस्कार/अवहेलना) करना

☞ **किं संसारे सारं, बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।**
मनुजेषु दृष्ट-तत्त्वं, स्वपरहितायोद्यतं जन्म॥6॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
संसारे	संसार में
सारं किम्?	सारभूत क्या है?
बहुशोऽपि	बार-बार
विचिन्त्यमानम्	विचारने पर
इदम् एव	यह ही (सारभूत) है कि
मनुजेषु जन्म	मनुष्य जन्म पाकर
दृष्टतत्त्वं	तत्त्वदर्शी होते हुए
स्व-परहिताय	अपने एवं दूसरों के कल्याण में
उद्यतं	तत्पर रहो

☞ **मदिरेव मोहजनकः, कः स्नेहः के च दस्यवः विषयाः।**
का भव-वल्ली तृष्णा, को बैरी नन्वनुद्योगः॥7॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
मदिरा इव	शराब की तरह
मोह जनकः	मोह को उत्पन्न करने वाला
कः?	कौन है?
स्नेहः	विषयानुराग/कषायानुराग/अघानुराग
के च	और कौन-कौन
दस्यवः?	चोर हैं?
विषयाः	इन्द्रिय और मन के विषय
भव-वल्ली का	संसार की बेल क्या है?
तृष्णा	तृष्णा
ननु बैरी कः	यथार्थ शत्रु कौन है?
अनुद्योगः	अकर्मण्यता

☞ **कस्माद्भयमिह मरणा, दन्धादपि को विशिष्यते रागी।**
कः शूरो यो ललना, लोचनबाणै र्न च व्यथितः॥8॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
इह कस्माद्	इस लोक में किससे
भयं?	भय होता है?
मरणात्	मरण से
अन्धात् अपि	अन्धे से भी
कः विशिष्यते	विशिष्ट अन्धा कौन है?
रागी	विषयासक्त, प्राणी
शूरो कः च?	और शूरवीर कौन है?
यो ललना	जो स्त्रियों के
लोचन-बाणैः	नेत्र रूप बाणों से
नः व्यथितः	विचलित नहीं होता

☞ **पातुं कर्णाञ्जलिभिः, किममृतमिव, बुध्यते सदुपदेशः।**
किं गुरुताया मूलं, यदेतदप्रार्थनं नामः।।9।।

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
कर्णाञ्जलिभिः	उभय कानों से
पातुं	पीने के लिए
अमृतम् इव	अमृत के समान
किम् बुध्यते?	क्या जाना जाता है?
सदुपदेशः	सदुपदेश/जिनोपदेश
गुरुतायां मूलं	बड़प्पन का कारण
किम्?	क्या है?
एतद् यत्	वह यह है कि
अप्रार्थनं नाम	अयाचक प्रवृत्ति (कुछ भी न मांगना)

☞ **किं गहनं स्त्री-चरितं, कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।**
किं दारिद्र्यमसंतोष, एव किं लाघवं याञ्चा।।10।।

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन!
गहनं किम्	जानने में जटिल क्या है?
स्त्री चरितं	स्त्री का चरित्र
चतुरः कः	चतुर कौन है?
यो तेन	जो स्त्रियों से
न खण्डितः	उगाये नहीं गए हैं।
दारिद्र्यं किम्?	निर्धनता क्या है?
असंतोष एव	संतोष का अभाव (ही निर्धनता है।)
लाघवं किम्	हीनता (लघुता क्या है?)
याञ्चा	अपने लिए कुछ मांगना (ही लघुता है।)

☞ **किं जीवितमनवद्यं, किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।**
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः॥11॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
जीवितम् किम्?	जीविन क्या है?
अनवद्यं	निर्दोषता ही जीवन है
जाड्यं किम्	जड़ता क्या है
पाट वेऽपि	चतुर होकर भी
अनभ्यासः	अभ्यास नहीं करना (जड़ता है।)
जागर्ति कः?	जागृत कौन है?
विवेकी	हेयोपादेय का ज्ञाता (ही जाग्रत है)
निद्रा का	निद्रा क्या है?
जन्तोः मूढ़ता	प्राणियों की अज्ञानता (ही निद्रा है)

☞ **नलिनीदलगतजललव, तरलं किं यौवनं धनमथायुः।**
के शशधरकरनिकरानुकारिणः सज्जना एव॥12॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
नलिनी दलगत	कमलिनी पत्र पर पड़ी
जल-लव	जल बिन्दुवत्
तरलं किम्	चंचल क्या है?
यौवनम् धनम्	जवानी, धन
अथ आयु	और आयु (ये चंचल हैं)
शशधरकरनिकर	चंद्रकिरणों के समुदाय का
अनुकारिणः कः?	अनुकरण करने वाले कौन हैं?
सज्जना एव	(उक्त प्रकार के) सज्जन पुरुष ही हैं।

☞ **को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।**
किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः॥13॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
नरकः कः	नरक क्या है?
परवशता	पराधीनता (ही नरक है)
सौख्यं किम्	वास्तविक सुख क्या है?
या सर्वसंग विरतिः	जो सम्पूर्ण परिग्रहों से विरिक्त है, वही सुख है
सत्यं किम्	सत्य क्या है?
भूतहितं	प्राणियों का हित करना (सत्य है)
प्रेयः किम्	प्रिय वस्तु क्या है?
प्राणिनामसवः	प्राणियों को अपने प्राण (ही प्रिय हैं।)

☞ **किं दानमनाकाङ्क्षं, किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।**
कोऽलंकारः शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम्॥14॥

अन्वयार्थ :

भगवन्	हे भगवन्!
दानं किम्?	दान क्या है?
अनाकांक्षं	बदले में कुछ पाने की इच्छा न रखकर दिया गया दान ही सच्चा दान है।
मित्रं किम्	मित्र कौन है?
यत् पापात्	जो पाप से
निवर्तयति	बचावे (वही सच्चा मित्र है।)
अलंकारः कः	आभूषण क्या है?
शीलं	सच्चरित्रता (ही आभूषण है)
वाचा मंडनं किम्	वाणी का भूषण क्या है?
सत्यं	सत्यवचन (वाणी का भूषण) है।

☞ **किमनर्थफलं मानसमसंगतं का सुखावहा मैत्री।**
सर्व व्यसन-विनाशे, को दक्षः सर्वथा त्यागः॥15॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्।
अनर्थफलं किम्	पाप का फल क्या है?
मानसम् असंगतम्	मन की आकुलता (पाप का फल है)
का सुखावहा	सुख का स्रोत क्या है?
सर्व व्यसन	सम्पूर्ण बुरी आदतों के
विनाशे	क्षय करने में
दक्षः कः	कुशल कौन है?
सर्वथा त्यागः	समस्त विभावों का त्रियोगों से त्याग करने वाला (पुरुष ही कुशल है)

☞ **कोऽन्धो योऽकार्यरतः, को बधिरो यः शृणोति न हितानि।**
को मूको यः काले, प्रियाणि वक्तुं न जानाति॥16॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
अंधः कः	अंधा कौन है?
यो अकार्यरतः	जो निंद्य कार्य में लीन है, वही अंधा है।
बधिरः कः	बहरा कौन है?
यः हितानि	जो हित की बात को
न श्रृणोति	नहीं सुनता वही बहरा है
मूकः कः?	गूंगा कौन है?
यः काले	जो यथा समय
प्रियाणि वक्तुं	प्रिय व मधुर वचन
न जानाति	बोलना नहीं जानता, वही गूंगा है।

☞ **किं मरणं मूर्खत्वं, किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।**
आमरणात् किं शल्यं, प्रच्छन्नं यत् कृतमकार्यम्॥17॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
मरणं किम्	मरण क्या है?
मूर्खत्वं	मूर्खता (ही मरण है)
च अनर्घ्यं किम्	और अमूल्य वस्तु क्या है?
चदवसरे दत्तं	यथा समय दिया गया उचित दान
आमरणात्	मरणपर्यन्त
शल्यं किम्	शल्य (हृदय चुभने वाली) चीज क्या है?
यत् प्रच्छन्नं	जो गुप्त रूप से
अकार्यं कृतम्	किया गया कुकर्म है।
	(वही मरणपर्यन्त चुभने वाली शल्य है)

☞ **कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।**
अवधीरणा क्वकार्या, खल परयोषित्परधनेषु॥18॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
कुत्र यत्नो	कहाँ प्रयत्न
विधेयो	करना चाहिए?
विद्याभ्यासे	विद्या के अभ्यास में
सदौषधे दाने	अच्छी औषधि में और दान करने में
अवधीरणा	उपेक्षा
क्व कार्या	कहाँ करनी चाहिए?
खल	दुष्ट
परयोषित्	परस्त्री और
परधनेषु	परधन में (उपेक्षा करनी चाहिए)

☞ **काहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा।**
का प्रेयसी विधेया, करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री॥19॥

अन्वयार्थ :

भगवन्	हे भगवन्!
का	किसका
अहर्निशम्	दिनरात
अनुचिन्त्या	चिन्तन करना चाहिए?
संसार असारता	संसार की असारता का (चिंतवन करना चाहिए)
न च प्रमदा	न कि स्त्रियों का (चिंतवन नहीं करना चाहिए)
प्रेयसी का विधेया	प्रेमिका किसको बनाना चाहिए?
करुणा-दाक्षिण्यं	करुणा चतुरता
मैत्री अपि	और मित्रता को (प्रेमिका बनाना चाहिए)

☞ **कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।**
मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य॥20॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
असुभिः	प्राणों के
कण्ठ गतैः	कण्ठ गत हो जाने पर
अपि	भी
आत्मा	अपने को
कस्य	किसके
समर्प्यते	अधीन
नो जातु	नहीं करना चाहिए?
मूर्खस्य	मूर्ख के
विषादस्य	विषादयुक्त के
च गर्वस्य	और घमंडी के
तथा कृतघ्नस्य	तथा कृतघ्नी के (अधीन कभी नहीं होना चाहिए)

☞ **कः पूज्यः सद्वृत्तः, कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।**
केन जितं जगमेतत्, सत्यतितिक्षावता पुंसा॥21॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
पूज्यः कः	पूजनीय कौन है?
सद्वृतः	सच्चरित्र व्यक्ति ही पूज्य है।
कं अधनम्	निर्धन किसको
आचक्षते	कहा जाता है?
चलितवृतम्	स्खलित चरित्र वाला ही निर्धन है।
एतत् जगम्	इस जगत को
केन जितं	किसके द्वारा जीता गया है?
सत्य तितिक्षावता	सत्यवादी, क्षमावान
पुंसा	पुरुष के द्वारा (यह जगत जीता गया है)

☞ **कस्मै नमः सुरैरपि, सुतरां क्रियते दयाप्रधानाय।**
कस्माद्‌द्विजितव्यं, संसारारण्यतः सुधिया॥22॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
सुरैः अपि	देवों के द्वारा
सुतरां	निरन्तर
कस्मै	किसको
नमः क्रियते	नमस्कार किया जाता है?
दया प्रधानाय	दया प्रधान पुरुष के लिए किया जाता है।
सुधिया	बुद्धिमानों को
कस्माद्	किससे
उद्‌विजितव्यं	डरना चाहिए?
संसार अरण्यतः	संसार रूपी वन से डरना चाहिए।

☞ **कस्य वशे प्राणिगणः, सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।**
क्व स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टादृष्टलाभाय॥23॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
प्राणिगणः	प्राणिगण
कस्य वशे	किसके वश में रहते हैं?
सत्य प्रियभाषिणो	सत्यवान, मधुरभाषी
विनीतस्य	विनयशील के वश में रहते हैं
क्व स्थातव्यं	हमें कहाँ स्थित होना चाहिए?
दृष्टादृष्टलाभाय	प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभ के लिए
न्याय्ये पथि	न्याय मार्ग में स्थित होना चाहिए।

☞ **विद्युत्विलसितचपलं, किं दुर्जन-संगतं युवतयश्च।**
कुलशैलनिष्प्रकम्पाः, के कलिकालेऽपि सत्पुरुषः॥24॥

अन्वयार्थ :

भगवन्	हे भगवन्
विद्युतविलसित	बिजली के चमत्कार के समान
चपलं किं	चंचल क्या है?
दुर्जनसंगतं	दुर्जनों की संगति
युवतयश्च	और युवतियों के विलास (विद्युतवत् चंचल हैं)
कुलशैल	पर्वतों के समान
निष्प्रकम्पाः	निष्प्रकम्प
के कलिकालेऽपि	कलिकाल में भी कौन है?
सत्पुरुषः	सत्पुरुष कलिकाल में भी पर्वत के समान अकंप है।

☞ **किं शौच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।**
तनुतरवित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्।।25।।

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
सति विभवे	सम्पत्ति के होते हुए भी
शौच्यं किम्	खेदजनक क्या है?
कार्पण्यं	कंजूसी (खेद जनक है)
सति विभवे	सम्पत्ति के होते हुए भी
प्रशस्यम् किम्	प्रशंसनीय क्या है?
औदार्यम्	उदारता (प्रशंसनीय है)
तनुतरवित्तस्य	धनहीन की भी
प्रशस्यम् किम्	प्रशंसनीय बात क्या है?
तथा	उसी प्रकार की उदारता।
प्रभविष्णोः	बलवान का
प्रशस्यम् किम्	प्रशंसनीय गुण क्या है?
यत् सहिष्णुत्वम्	जो सहनशीलता है।

☞ **चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।**
किं तद्वदन्ति भूयो विधूतः तमसो विशेषेण।।26।।

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
ननु इह	इस लोक में
चिन्तामणिः इव	चिन्तामणि के समान
दुर्लभम्	दुर्लभ क्या है?
चतुर्भद्रम्	चार भद्र हैं।
तद् किम्	वे चार भद्र कौन हैं?
तमसो विशेषेण	अज्ञान अंधकार के क्षय से
विद्यूतः भूयो	पवित्रात्मा हुए हैं वे
वदन्ति	कहते हैं कि–

☞ **दानं प्रियवाक्सहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्!**
त्याग-सहितं च वित्तं, दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्॥27॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
प्रियवाक्सहितं	प्रिय वचन सहित
दानं	दान
अगर्वं ज्ञानं	घमंड रहित ज्ञान
क्षमान्वितं शौर्यं	क्षमा सहित शूरवीरता
त्याग सहितं च	और दान सहित
वित्त	सम्पत्ति
एतत् चतुर्भद्रम्	ये चार भद्र
दुर्लभम्	अतिदुर्लभ हैं।

☞ **इति कण्ठगता विमला, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका येषाम्!**
ते मुक्ताभरणा अपि विभान्ति विद्वत्समाजेषु॥28॥

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्!
इति	इस प्रकार
येषाम्	जिन पुरुषों के
विमला	निर्दोष
प्रश्नोत्तर रत्नमालिका	प्रश्नोत्तर रत्नमाला
कण्ठगता	कण्ठ में धारण की गई है।
ते	वे
मुक्ताभरणा	आभूषण रहित
अपि	भी
विद्वत्समाजेषु	विद्वानों की सभा में
विभान्ति	सुशोभित होते हैं।

☞ **विवेकात्यक्त राज्येन्, राज्ञेयं रत्नमालिका।**
रचिताऽमोघवर्षेण, सुधियां सदलंकृतिः।।29।।

अन्वयार्थ :

भगवन्!	हे भगवन्।
विवेकात्	हेयोपादेय का ज्ञान हो जाने से
राज्येनत्यक्त	राज्य से विरक्त
अमोघवर्षेण	अमोघवर्ष
राज्ञा	राजा के द्वारा
इयं रत्नमालिका	यह जो रत्नमालिका
रचिता	रची गई हैं, वही
सुधियां	सज्जन पुरुषों का
सदलंकृतिः	वास्तविक आभूषण है।

वादीभकेसरी आचार्य समंतभद्र स्वामी कृत

2- lYys[kuk ,oa lekf/kejk.k

(महामृत्यु महोत्सव)

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य, वीतरागो ददातु मे।
समाधिबोधिपाथेयं, यावन् मुक्तिपुरीं पुनः॥1॥

अर्थ–मैं (समाधिमरण द्वारा) मृत्यु-मार्ग में प्रवृत्त हुआ हूँ। इस मार्ग को निरन्तराय पार कर सकूँ, इसके लिए भगवन् वीतरागदेव समाधि (स्वरूप के चिन्तन में योगपूर्ण स्थिति) तथा बोधि (रत्नत्रयलाभ) एवं परलोक पथ में उपकारक पाथेय प्रदान करें, जिससे मैं मुक्तिपुरी को पहुँच सकूँ।

वृमिजालशताकीर्णे, जर्जरे देहपञ्जरे।
भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञानविग्रह॥2॥

अर्थ–हे आत्मन्! शत्-शत् कृमियों से भरा हुआ, जर्जर शरीर-रूप यह पिंजरा टूट रहा है, इस पर तुम भयभीत न हों; क्योंकि तुम ज्ञानशरीर धारी हो। यह पौद्गलिक शरीर तुम नहीं हो।

ज्ञानिन्! भयं भवेत् कस्मात्, प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे।
स्वरूपस्थः पुरं याति, देहि देहान्तर-स्थितिः॥3॥

अर्थ–हे ज्ञानी आत्मन्! मृत्युमहोत्सव के उपस्थित होने पर तुम किस बात का भय करते हो। यह आत्मा अपने स्वरूप में स्थित रहता है और एक देह से दूसरे देह में जाता है। इसमें उद्विग्न होने की कौन सी बात है?

सुदत्तं प्राप्तये यस्माद्, दृश्यते पूर्वसत्तमै।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं, मृत्योर्भीतिः कुतः सताम्॥4॥

अर्थ–पूर्वकाल के ऋषि और गणधर आदि सत्पुरुष ऐसा कहते हैं कि अपने किए हुए कर्त्तव्य तथा चरित्र का फल तो मृत्यु होने पर ही पाया जाता है। स्वर्ग सुखों का भोग भी मृत्यु के अनन्तर ही मिलता है। उस तपः परिणामदायी मृत्यु से भय क्या?

आगर्भाद् दुःखसन्तप्त, प्रक्षिप्तो देहपञ्जरे।
नात्मा विमुञ्चतेऽन्येन, मृत्युभूमिपतिं विना॥5॥

अर्थ–ज्ञानी पुरुष विचारता है कि इस कर्म रिपु ने मेरे आत्मा को देह पिंजरे में बन्दी बना रखा है जिस समय से यह गर्भ में आया है उसी क्षण से क्षुधा, तृष्णा, रोग, संयोग-वियोग आदि दुःखों ने इसे घेर लिख है। इस बन्धनग्रस्त आत्मा को मृत्युराज के सिवा कौन मुक्त कर सकता है।

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं, दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः।
मृत्युमित्रप्रसादेन, प्राप्यन्ते सुखसम्पदः॥6॥

अर्थ–आत्मदर्शी लोग सम्पूर्ण दुःख को देने वाले इस देहपिण्ड को दूर करके मृत्युरूप मित्र की कृपा से सुख-सम्पदाओं को प्राप्त करते हैं।

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते, येनात्मार्थो न साधितः।
निमग्नो जन्मजम्बाले, से पश्चात् किं करिष्यति॥7॥

अर्थ–जिस जीव ने मृत्युरूपी कल्पद्रुम प्राप्त करके भी अपने कल्याण की सिद्धि नहीं की, वह संसार समुद्र में डूबने के बाद क्या कर सकता है।

जीर्ण-देहादिकं सर्वं, नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय, सतां सातोत्थितिर्यथा॥8॥

अर्थ–ज्ञानी पुरुष मृत्यु को साता कर्म का उदय मानते हैं, जिसकी कृपा से जीर्ण-शीर्ण शरीर छूट कर नवीन शरीर की प्राप्ति होती है।

सुखं दुःखं सदा वेत्ति, देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्।
मृत्युभीतिस्तदा कस्य, जायते परमार्थत॥9॥

अर्थ–यह आत्मा देह में रह कर सुख दुःख का सदैव अनुभव करता है और स्वयं ही परलोक-गमन करता है। तब परमार्थदृष्टि से मृत्य भय किसे हो?

संसारासक्तोचित्तानां, मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदयते पुनः सोऽपि, ज्ञानवैराग्यवासिनाम्॥10॥

अर्थ–जिन जीवों का चित्त संसार में आसक्तिवान् है, वे अपने आत्म-स्वरूप को नहीं जानते, इसलिए उन्हें मृत्यु भयप्रद प्रतीत होती है; किन्तु जो महान आत्माएँ आत्मस्वरूप को जानती हैं और वैराग्य धारण करती हैं उनके लिए तो मृत्यु आनन्ददायी है।

पुराधीशो यदा याति, सुकृतस्य बुभुत्सया।
तदासौ वार्यते केन, प्रपञ्चैः पञ्चभौतिकः॥11॥

अर्थ–जीव की आयु पूर्ण होने पर जब परलोक-सम्बन्धी आयु का उदय आ जाए तब शरीरादि पंचभूतों के समूह से परलोकगमन करते हुए कौन इसका प्रतिबंध कर सकता है?

मृत्युकाले सतां दुःख, यद् भवेद् व्याधिसम्भवम्।
देहमोहविनाशाय, मन्ये शिवसुखाय च॥12॥

अर्थ–मृत्यु के समय कर्म के उदाय से रोगादि उत्पन्न होते हैं। वे व्याधिजन्य दुःख ज्ञानवान् व्यक्ति के लिए देह पर से मोहनिवृत्ति के लिए हेतूभूत होते हैं और उनसे निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है।

ज्ञानिनोऽमृतसङ्गाय, मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आकुम्भस्य लोकेऽस्मिन्, भवेत् पाकविधिर्यथा॥13॥

अर्थ–यद्यपि मृत्यु तापकारी है तथापि ज्ञानी उसे अमृत की संगति के लिए कारण मानते हैं। कच्चा कुम्भ अग्निसंस्कार होने पर पक्व होता है तथा अमृत की संगति का पात्र बनता है।

यत् फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायामसविम्बनात्।
तत् फलं सुखसाध्यं स्यात्, मृत्युकाले समाधिना॥14॥

अर्थ–उत्तम व्रतों के कष्टों को सहन करने के पश्चात् जिस फल की प्राप्ति होती है, समाधिमरण लेने वाले को वह फल सुख से प्राप्त हो जाता है।

आनर्तः शान्तिमान् मर्त्यो, न तिर्यक् नापि नारकः।
धर्मध्यानपरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः॥15॥

अर्थ–मरणदशा को प्राप्त करता हुआ जो सत्पुरुष आर्त परिणामों से रहित होता है, शान्त रहता है, वह जीव तिर्यक् अथवा नरक गति में नहीं जाता। जो उस बेला में धर्म ध्यान-परायण अनशनव्रत लेकर शरीर का त्याग करता है, वह इन्द्र अथवा महर्द्धिक देव होता है।

तप्तस्य तपसश्चापि, पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि, फलं मृत्युः समाधिना॥16॥

अर्थ–शास्त्रविहित तप तपने का, व्रतों के पालन करने का, तथा शास्त्र-स्वाध्याय का फल समाधि के द्वारा मृत्यु की प्राप्ति होना है।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा, नवे भवेत् प्रीतिरिति हि जनवादः।
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरवः॥17॥

अर्थ–संसार में प्रसिद्ध है कि जो अतिपरिचित हैं उनमें अवज्ञाबुद्धि उत्पन्न होनी स्वाभाविक है, तथा जो नवीन हैं, उसमें सहज ही प्रीति होना भी स्वाभाविक है। अतः यह देह जो वर्षों पुराना, शिथिल तथा जर्जर हो गया है, इसके नाश होने पर नवीन देह मिलेगी। फिर भय किसलिए? अर्थात् जीर्ण के त्याग और नवीन की प्राप्ति के लिए उत्साहपूर्वक प्रवृत्त होना चाहिए। उस शुभ बेला में अशुभ दुर्गतिदायक कर्मबन्ध नहीं करने चाहिए।

सल्लेखना कब धारण करें?

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥18॥

अन्वयार्थ–(आर्या) गणधरादि देव (उपसर्गे) उपसर्ग आने पर (दुर्भिक्षे) दुर्भिक्ष आने पर (जरसि) बुढ़ापा आने पर (च) और (निःप्रतीकारे रुजायां) असाध्य रोग/जिसका कोई इलाज नहीं है ऐसा रोग हो जाने पर (धर्माय) ध र्म के लिए (तनुविमोचनं) शरीर का त्याग करने को (सल्लेखनां) सल्लेखना (आहुः) कहते हैं।

अर्थ : गणधरादि महापुरुषों ने उपसर्ग, अकाल, बुढ़ापा और रोगादिक के हो जाने पर रत्नत्रय रूप धर्म की रक्षा के लिए सम्यक् प्रकार से शरीर का त्याग करने को सल्लेखना कहा है।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तः क्रियाधिकरणं, तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यं॥19॥

अन्वयार्थ–(अन्तक्रियाधिकरणं) मरण समय संन्यास या सल्लेखना व्रत धारण करना ही (तपः फलं) तपस्या का फल है (इति) इस प्रकार (सकलदर्शिनः) केवलज्ञानी अरिहन्तदेव (स्तुवते) कहते हैं। (तस्मात्) इसलिए (यावद्विभवं) अपनी शक्ति के अनुसार (समाधिमरणे) सल्लेखना व्रत धारण करने में (प्रयतितव्यम्) प्रयत्न करना चाहिए।

अर्थ–सर्वज्ञदेव ने तपस्या का फल अन्त समय सल्लेखना व्रत धारण करना कहा है, इसलिए अपनी शक्ति अनुसार सल्लेखना धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सल्लेखना व्रत धारण विधि

स्नेहं वैरं संगं परिग्रहं चापहाय च शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत् प्रियैर्वचनैः॥20॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितामृनतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम्॥21॥

अन्वयार्थ–(**शुद्धमना सन्**) निर्मल चित्त वाला होता हुआ सल्लेखनाधारी श्रावक (**स्नेहं**) राग (**वैरं**) द्वेष (**संङ्ग**) मोह (**च परिग्रहं**) और परिग्रह को छोड़कर (**प्रियवचनैः**) प्रियवचनों से (**स्वजनं**) अपने परिवार को (**च परिजनम् अपि**) अन्य-जन नौकर-चाकरों को भी (**स्वयं**) स्वय (**क्षांत्वा**) क्षमा करके (**क्षमयेत्**) उनसे भी क्षमा करावे। तथा (**कृतिकारितं च अनुमतम्**) स्वयं किए गए, दूसरे से कराए गए वह अनुमोदना किए गए (**सर्वम् एनः**) समस्त पापों की (**निर्व्याजम्**) कपटरहित (**आलोच्य**) आलोचना करके (**आमरणस्थायि**) मरणपर्यन्त रहने वाले (**निःशेष महाव्रतं**) पाँच महाव्रतों को (**आरोपयेत्**) धारण करें।

अर्थ–सल्लेखना धारी श्रावक स्नेह, बैर न अंतरंग, बहिरंग परिग्रह का त्याग करके निर्मल चित्त वाला होते हुए अपने परिवार के लोगों तथा दासी दास आदि को स्वयं क्षमा करके उनसे भी क्षमा करावे। स्वयं किए दूसरों से कराए व अनुमोदना किए गए समस्त पापों की कपट रहित आलोचना करके मरण पर्यन्त रहने वाले पाँचों महाव्रतों को धारण करें।

कषाय सल्लेखना

शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा॥
सत्वोत्साहमुदीर्य च, मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥22॥

अन्वयार्थ–(**शोकं**) शोक (**भयं**) भय (**अवसादं**) विषाद (**क्लेदं**) राग (**कालुष्यं**) कलुषता (**अरतिं अपि**) अरति को भी (**हित्वा**) छोड़

करके/त्याग करके (**च**) और (**सत्वोत्साहं**) अपने बल और उत्साह को (**उदीर्य**) प्रकट करके (**अमृतैः**) अमृतमयी (**श्रुतैः**) श्रुत/शास्त्रों के द्वारा (**मनः प्रसाद्यम्**) मन को प्रसन्न करे।

अर्थ–सल्लेखना धारी श्रावक शोक, भय, विषाद, राग-द्वेष, कलुषता आदि भावों का त्याग करके अपने बल व उत्साह को प्रकट करके सांसारिक संतापों को दूर करने वाले अमृतमयी शास्त्रों के द्वारा अपने मन को प्रसन्न करे।

आहारं परिहाप्य, क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा, खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥23॥
खरपानहापनामपि, कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कार मनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन॥24॥

अन्वयार्थ–सल्लेखनाधारी श्रावक (**क्रमशः**) क्रम-क्रम से (**आहारं परिहाप्य**) आहार को छोड़कर (**स्निग्धं**) दूध आदि चिक्कण तरल पदार्थों को (**विवर्द्धयेत्**) बढ़ावे अर्थात् भोजन में लेवे (**च**) और (**स्निग्धं**) दूध ादि को (**हापयित्वा**) छोड़कर (**क्रमशः**) क्रम-क्रम से (**खरपानं**) छाछ, गरम जल आदि को (**पूरयेत्**) बढ़ावे अर्थात् पीवे।

पश्चात् (**खरपानम् अपि**) छाछ, गर्म पानी आदि को भी त्याग (**कृत्वा**) करके (**शक्त्या**) अपनी शक्ति के अनुसार (**उपवासं कृत्वा**) उपवास को करके (**सर्वप्रत्यनेन**) सब प्रकार के प्रयत्न से (**पञ्चनमस्कारमनाः सन्**) पञ्चनमस्कार मन्त्र को मन से पढ़ते हुए (**तनुं**) शरीर को (**त्यजेत्**) छोड़े।

अर्थ–सल्लेखनाधारीक्षपक काय को कृश करने के लिए प्रथम अशन खाद्य, लेह्य को क्रम से छोड़कर दूध आदि को ग्रहण करें, बाद में उसका भी त्याग कर छाछ ग्रहण करें, फिर छाछ का त्याग कर गरम जल लेवे पश्चात् गरम जल-पान का भी त्यागकर, अपनी शक्ति अनुसार उपवास ध ारण करके प्रयत्नपूर्वक नमस्कार मन्त्र का स्मरण करता हुआ नश्वर शरीर का त्याग करें।

सल्लेखना के अतीचार

जीवित-मरणाऽऽशंसे भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः।
सल्लेखनाऽतिचाराः पञ्चजिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥25॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्रैः) जिनेन्द्रदेव के द्वारा **(सल्लेखनातिचाराः)** सल्लेखना के अतीचार **(पञ्च)** पाँच **(समादिष्टाः)** कहे गए हैं। **(जीवित आशंसे)** जीने की अभिलाषा, **(मरणाऽऽशंसे)** मरण की अभिलाषा, **(भय-मित्र स्मृति)** भय, मित्रादि की स्मृति (तथा) **(निदाननामानः)** निदान नामक।

अर्थ–सल्लेखना धारण करके जीने की इच्छा करना, तीव्र वेदना के प्रसंग अपने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना, परलोकादि का भय करना, बाल्यावस्था में साथ खेलने वाले मित्रादि का स्मरण करना तथा आगामी भव में स्वर्गादिक के ऐश्वर्य को प्राप्त करने की इच्छा करना ये पाँच अतीचार सल्लेखना के जिनेन्द्रदेव ने कहे हैं।

सल्लेखना धारण का फल

निःश्रेयसमभ्युदयं निश्रतीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढ़॥26॥

अन्वयार्थ–(पीतधर्मा) धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला निरतिचार सल्लेखना धारी जीव **(सर्वैः दुःखै)** सभी प्रकार के दुःखों से **(अनालीढ़ः)** रहित होता हुआ **(निश्तीरं)** अपार **(दुस्तरं)** दुर्लभ **(अभ्युदयं)** उत्कृष्ट उदय वाले **(निःश्रेयस्)** मोक्ष स्वरूप **(सुखाम्बुनिधिं)** सुख के समुद्र का **(निःपिबति)** पान करना है/अनुभव करता है।

अर्थ–रत्नत्रय धर्म, अहिंसा धर्म व उत्तम क्षमादि दस धर्मों का पान करने वाला सल्लेखनाधारी जीव संसार के सभी दुःखों से रहित होता हुआ अपार दुस्तर, उत्कृष्ट उदय वाले मुक्ति के समुद्र का अनुभव करता है अर्थात् अनन्त, शाश्वत सुख के सागर मुक्ति सुख को प्राप्त करता है।

मोक्ष का स्वरूप

जन्मजरामयमरणैः, शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं, निःश्रेयसमिष्यते नित्यम्॥27॥

अन्वयार्थ–(**नित्यम्**) शाश्वत (**जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैः च परिमुक्तम्**) जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दुख और भय से रहित (**शुद्धसुखं**) अतीन्द्रिय सुख वाला (**निःश्रेयसं**) परम कल्याणमय तत्त्व (**निर्वाणं**) मोक्ष (**इष्यते**) कहा गया है।

अर्थ–अविनाशी, जन्म, बुढ़ापा, रोग, शोक, मृत्यु, दुःख व सात भयों से रहित, अक्षय अतीन्द्रिय सुखवाला परम कल्याणकारी तत्त्व मोक्ष कहा गया है।

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रल्हादतृप्तिशुद्धियुजः।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥28॥

अन्वयार्थ–मुक्त जीव (**विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रल्हादतृप्तिशुद्धियुजः**) केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, स्वास्थ्य/परम उदासीनता, प्रल्हाद/अनन्तसुख, तृप्ति और निर्मलता से युक्त होते हुए (**निरतिशया**) अतिशय आदि गुणों की हीनाधिकता से रहित (**निरवधयो**) काल की मर्यादा से रहित (**निःश्रेयसम् सुखम्**) मोक्ष के सुख में (**आवसन्ति**) निवास करते हैं।

अर्थ–मुक्त जीव केवलज्ञान, केवलदर्शन, निराकुलतारूप परम स्वास्थ्य, अनंतसुख, तृप्ति और निर्मलता से युक्त होते हुए अतिशय आदि अनंत गुणों की हीनाधिकता से रहित अनंतकाल तक मोक्ष-सुख में निवास करता हुआ अव्याबाध सुख का अनुभव करते हैं।

मुक्त जीवों की विशेषता

काले कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रियता लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः॥29॥

अन्वयार्थ–(**च**) और (यदि) (**त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः**) तीन लोक में संभ्रांति कारक/उलट-पलट करने वाला (**उत्पातोऽपि**) प्रलय भी (**स्यात्**) हो जावे (**तथापि**) तो भी (**कल्पशते काले गतेः अपि**) सैकड़ों

कल्पकाल बीत जाने पर भी (**शिवानां**) मुक्त जीवों के दर्शन, ज्ञानादि गुणों में (**विक्रिया**) विकार (**लक्ष्या न**) दिखाई नहीं देता।

अर्थ–और यदि इस संसार में तीन लोक को उलट-पलट कर देने वाला ऐसा प्रलय भी हो जावे फिर भी मुक्तावस्था में सिद्ध जीवों में सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी विभाव परिणति/विकृति नहीं देखी जाती है।

मुक्त जीवों की विशेषता

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः॥30॥

अन्वयार्थ–(**निःश्रेयसम् अधिपन्नाः**) मुक्त/मोक्ष अवस्था को प्राप्त करने वाले जीव (**निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरणभासुरात्मानः**) किट्ट-कालिमा से रहित सुवर्ण की कान्ति के समान दीप्तिमान है आत्मा जिनका ऐसे होते हुए (**त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं**) तीन लोक में शिरोमणिभूत शोभा को (**दधते**) धारण करते हैं।

अर्थ–मोक्ष/सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने वाले जीव किट्ट-कालिमा से रहित स्वर्ण की कान्ति के समान देदीप्यमान होते हुए तीन लोक में शिरोमणिभूत शोभा को धारण करते हैं।

पूजार्थाज्ञेश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥31॥

अन्वयार्थ–(**सद्धर्मः**) ''सल्लेखना व्रत के द्वारा प्राप्त पुण्य विशेष'' यही हुआ सद्धर्म, (बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः) बल/पराक्रम, परिवार भोगोपभोग सामग्री से परिपूर्ण (पूजा-अर्थ-आज्ञा-ऐश्वर्यैः) प्रतिष्ठा धन और आज्ञा के ऐश्वर्यों के द्वारा (अतशयितभुवनम्) अतिक्रान्त किया है लोक को जिसने ऐसे (अद्भुतं अभ्युदयं) आश्चर्यकारी इन्द्रादि पद की प्राप्ति रूप अभ्युदय को (फलति) फलता है।

अर्थ–सल्लेखना व्रत के द्वारा सञ्चित पुण्य रूप सद्धर्म विशेष बल/पराक्रम, परिवार, भोगोपभोग की सामग्री से परिपूर्ण, प्रतिष्ठा धन-वैभव और आज्ञा के ऐश्वर्यों सहित लोकातिशायी इन्द्रादि पद की प्राप्तिरूप अभ्युदय को प्राप्त कराता है।

इति सल्लेखना एवं समाधिमरण

3- ijekRe Lo:i

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयं।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसंगविवर्जितम्।।1।।

अर्थ–निश्चय नय से आत्मा अपने आनन्दरूप, शुद्ध, निराकार, निरोग, अनन्त सुख से सहित, सम्पूर्ण परिग्रहों से रहित है।

लोकमात्रप्रमाणोऽयं निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः।।2।।

अर्थ–निश्चय से यह आत्मा लोक के बराबर कहते हैं, व्यवहार से आचार्यों ने शरीर प्रमाण आत्मा को कहा है इसमें सन्देह नहीं है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्प-समाधितः।।3।।

अर्थ–स्थिर होकर जो क्षणमात्र में देखा गया है, वह क्षणमात्र में ही शुद्ध, सन्देह रहित, निर्वकल्प समाधि सहित, स्वस्थ चित्त वाला आत्मा है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुंगवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः।।4।।

अर्थ–आत्मा ही श्रेष्ठ ब्रह्मा है, वह जिनेन्द्रों में श्रेष्ठ है, वही उत्तम तत्त्व है, वही परम गुरु है।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमो तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकः।।5।।

अर्थ–''वही उत्कृष्ट ज्योति है, वह उत्तम तत्त्व है, तप है, वही श्रेष्ठ ध्यान है, वही परमात्मा है।''

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनं।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः।।6।।

अर्थ–वही कल्याण रूप है, वही सुख का पात्र है, वही शुद्ध चैतन्य है, वही अतिशय कल्याण है, वही उत्कृष्ट आनन्द है, वही सुख देने वाला है, वही उत्तम ज्ञान है।

स एव परमानंदः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः।।7।।

अर्थ–वही उत्कृष्ट आनन्द है, वही शुद्ध चैतन्य है, वही सुख देने वाला है, वही उत्तम ज्ञान है, वही गुणों का समुद्र है।

परमाह्लादसंपन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पंडितः॥8॥

अर्थ–शरीर में उत्कृष्ट आनन्द से सहित, राग-द्वेष से रहित आत्मा को (वह) सिद्ध ''मैं हूँ' ऐसा जो जानता है, वह पण्डित है।

आकार-रहितं शुद्धं स्व-स्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतम्, निर्विकारं निरंजनं॥9॥

अर्थ–उत्तम स्वाभाविक चिदानन्द को प्राप्त करने के लिए जो आकार रहित, शुद्ध अपने स्वरूप में लीन, आठ गुणों से सहित, विकार रहित, निष्कलंक जो सिद्ध उनके समान आत्मा को जानता है, वही पण्डित है।

तत्सदृशं निजात्मानं, यो जानाति सः पंडितः।
सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे॥10॥

अर्थ–उत्तम स्वाभाविक चिदानन्द को प्रकाशित करने के लिए जो आकार रहित, शुद्ध अपने स्वरूप में लीन, आठ गुणों से सहित, विकार रहित, निष्कलंक जो सिद्ध उनके समान आत्मा को जानता है, वह पण्डित है।

पाषाणेषु तथा हेमं, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये यथा शिवः॥11॥

अर्थ–सुवर्ण पत्थर में जैसे सोना रहता है, दूध में जैसे घी रहता है तिल में जैसे तेल रहता है, उसी प्रकार शरीर में यह आत्मा रहता है।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति सः पण्डितः॥12॥

अर्थ–लकड़ी के बीच में जैसे शक्ति रूप से अग्नि रहती है उसी प्रकार शरीर में यह आत्मा रहता है। इस प्रकार जो जानता है, वह पण्डित है।

परमानन्द स्तोत्र

परमानन्दसंयुक्तं निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थित्॥1॥

अर्थ–ध्यानहीन मनुष्य अपने शरीर में रहने वाले निराकुल आनन्द वाले विकार रहित तथा निरोग आत्मा को नहीं देखते।

अनंतसुखसम्पन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम्।
परमानन्दसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः॥2॥

अर्थ–ध्यानशील मनुष्य अनन्त सुखों से सहित, ज्ञानरूपी अमृत के समुद्र रूप अनन्त वीर्य से सहित, उत्कृष्ट आत्मा के दर्शन स्वरूप अनन्त चतुष्ट्य सहित आत्मा को देखते हैं।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंगविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं शुद्धचैतन्यलक्षणम्॥3॥

अर्थ–ध्यान में लीन मनुष्य विकाररहित, बाधारहित, सब परिग्रह से रहित निराकुल आनन्द सहित, शुद्धोपयोगी आत्मा को देखता है।

उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंता स्यात् परचिंताऽधमाधमा॥4॥

अर्थ–अपने आत्मा की चिन्ता उत्तम है। शरीर की चिन्ता मध्यम है, विषयों की चिन्ता अधम है और दूसरों की चिन्ता अधम से अधम है।

निर्विकल्पसमुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजुजिं कृत्वा, तप्तिबंति तपस्विनः॥5॥

अर्थ–एकाग्रता से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही अमृत है, तपस्वी लोग विवेक की अंजलि बनाकर उसी को पीते हैं।

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति सः पण्डितः
स सेवते निजात्मनां, परमानन्दकारणम्॥6॥

अर्थ–जो हमेशा आनन्द रूप आत्मा को जानता है, वह पण्डित है, वही निराकुल आनन्द में कारणभूत अपनी आत्मा का सेवन करता है।

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः॥7॥

अर्थ–जैसे नल से पानी सर्वदा अलग रहता है, वैसे ही आत्मा स्वभाव से शरीर में पृथक् निर्मल रहता है।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि निश्चयेन चिदात्मनः॥8॥

अर्थ–निश्चय से चैतन्य रूपी आत्मा द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से रहित सिद्ध परमात्मा है। ऐसा जानो।

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं, निजदेहे व्यवस्थिम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम्॥9॥

अर्थ–जिस प्रकार जन्म से अन्धे, सूर्य को नहीं देखते उसी प्रकार ध्यानहीन प्राणी अपने शरीर में रहने वाले सुख स्वभाव रूप आत्मा को नहीं देखते हैं।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनोयेन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम्॥10॥

अर्थ–जिससे मन स्थिर होता है, ऐसा सुन्दर ध्यान जब तक किया जाता है तब उस समय चमत्कारी आत्मा शुद्धात्मा को देखा जाता है।

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्तेदुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव॥11॥

अर्थ–जो उत्कृष्ट मुनि आत्म-ध्यान लीन होते हैं, वे नियम से दुःखरहित होते हैं और यथार्थ आत्मस्वरूप को शीघ्र ही प्राप्त कर एक क्षण में ही मोक्ष चले जाते हैं।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वम्, समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तम्।
स्वभावलीला निवसन्ति नित्यम्, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम्॥12॥

अर्थ–जो योगी अपने ही आनन्द रूप, परमात्मस्वरूप सब संकल्प विकल्पों से रहित वस्तु तत्त्व को जानते व मानते हैं, वे हमेशा निज स्वभाव में लीन रहते हैं।

श्री पद्मसिंह मुनि कृत

4- Kku&lkj

सिरि वड्ढमाणसामी सिरसा णमिऊण कम्मणिड्डहणं।
वोच्छामि णाणसारं जह भणियं पुव्वसूरीहिं।।1।।

अर्थ—कर्मों को नष्ट कर देने वाले श्री वर्द्धमान स्वामी को सिर से नमस्कार करके ज्ञान सार को कहूँगा, जैसा पूर्व आचार्यों ने कहा है।

जीवो कम्मणिबद्धो चउगइ-संसार-सायरे मग्गो।
बुड्डई दुक्खक्कंतो अलहंतो णाणबोहित्थं।।2।।

अर्थ—कर्मों से बद्ध जीव, ज्ञानबोधि को शुद्ध धर्म लाभ को न प्राप्त करता हुआ, दु:खों से घिरकर चार गति रूप घोर संसार-सागर में डूबता है।

णाणं जिणेहि भणियं फुडत्थवाईहिं विगलयेवेहिं।
तं वि य णिस्संदेहं णायव्वं गुरुपसाएणा।।3।।

अर्थ—चार घाति कर्मों से रहित एवं केवल ज्ञान के द्वारा पदार्थों को प्रत्यक्ष जान कर कथन करने वाले जिन देव ने ज्ञान का कथन किया है। गुरु के प्रसाद से उसे सन्देह रहित होकर जानना चाहिए।

कन्दप्पदप्पदलणो डम्भविहीणो विमुक्कवावारो।
उग्गतवदित्तगतो जोई विण्णायपरमत्थो।।4।।

अर्थ—काम के मद का दलन करने वाला, दम्भरहित, समस्त प्रकार के लौकिक व्यापारों को छोड़ देने वाला, उग्र तप से जिसका शरीर आलोकित रहता है और जिसने परमार्थ को जान लिया है ऐसा योगी साधु होता है।

पंचमहव्वयकलिओ मयमहणो कोहलोहभयचत्तो।
एसो गुरुत्ति भण्णइ तम्हा जाणेइ एवएसं।।5।।

अर्थ—जो पाँच महाव्रतों से शोभित है, जिसने मद को दूर कर दिया है, और क्रोध, लोभ, भय से रहित है उसे गुरु कहते हैं। उससे उपदेश को जानो।

पत्तोवएससारो जोई जइण वि जिणेइ णियचित्तं
तो तस्सण थाइ थिरं झाणं मरूअहयपत्तंव।।6।।

अर्थ–उपदेश का सार प्राप्त करके भी योगी यदि अपने मन को नहीं जीतता तो वायु से कम्पित पत्ते की तरह उसका चित्त स्थिर नहीं रहता। अत: मन को जीतना आवश्यक है।

झाणेण विणा जोई असमत्थो होइ कम्मणिड्डहणे।
दाढणहविहीणो जह सीहो वरगयंदाणं।।7।।

अर्थ–ध्यान के बिना योगी कर्मों को भस्म करने में असमर्थ होता है। जैसे दाढ़ और नखों से विहीन सिंह उत्कृष्ट हाथियों को परास्त करने में असमर्थ होता है।

तम्हा तडिव्व चवलं णियचित्तंजोइणा जिणेयव्वं।
जियचित्तं णियझाणं होइ थिरं बद्धसलिलं व।।8।।

अर्थ–अत: योगी को बिजली की तरह चंचल अपना चित्त जीतना चाहिए, क्योंकि चित्त को वश में करने पर बद्ध जल की तरह आत्मा का ध्यान स्थिर होता है।

गिरिकन्दरविवरसिलासयेयु मठमंदिरेसु सुण्णेसु।
णिद्दंस-मसयणिज्जणठाणेसु झाणमब्भसह।।9।।

अर्थ–पहाड़ की गुफाओं में, वृक्ष के कोटरों में, चट्टानों पर, शून्य मठों और मन्दिरों में, जो स्थान डाँस, मच्छर से रहित तथा निर्जन हो वहाँ ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् चित्त को चञ्चल कर देने वाली वस्तु जहाँ नहीं हो वहाँ ध्यान करना चाहिए।

झाणं उचप्पयारं भणंति वरजोइणो जियकसाया।
अट्टं तह य रउद्दं धम्मं तह सुक्क-झाणं च।।10।।

अर्थ–कषायों को जीतने वाले उत्कृष्ट योगी ध्यान के चार भेद कहते हैं–आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

तम्बोल-कुसुमलेवण-भूसणपियपुत्तचिंतणं अहं।
बंधणडहणविचारणमारणचिंता रउद्दम्मि।।11।।

अर्थ–ताम्बूल, फूल, लेपन, भूषण और प्रिय पुत्र की चिन्ता करना आर्तध्यान है तथा दूसरों को बाँधने, जलाने, विदारण करने और जान लेने की चिन्ता रौद्रध्यान में होती है।

सुत्तत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं।
गयसंकप्पवियप्पं सुक्कज्झाणं मुणेयव्वं।।12।।

अर्थ–सूत्र के अर्थ की, चौदह मार्गणाओं की और महाव्रतों की भावना, उनके सम्बन्ध में चिन्तन करना धर्मध्यान है, और समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित शुक्लध्यान जानना चाहिए।

तिरियगई अट्टेण णरयगई तह रउद्दझाणेण।
देवगई धम्मेण सिवगइ तह सुक्कझाणेण।।13।।

अर्थ–आर्तध्यान से तिर्यञ्चगति, रौद्रध्यान से नरकगति, धर्म-ध्यान से देवगति और शुक्लध्यान से शिवगति, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अट्टरउददं झाणं तिरिक्खणारयदुक्खसयकरणं।
चइऊण कुणह धम्मं सुक्खज्झाणं च किं बहुणा।।14।।

अर्थ–तिर्यञ्चगति और नरकगति के सैकड़ों दु:खों के करने वाले आर्तध्यान और रौद्रध्यान को त्यागकर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान करो। इस विषय में अधिक क्या कहें।

सामाइयं जिणुत्तं पढमं काऊण परमभत्तीए।
चित्तह धम्मझाणं गलइ मलं जेण सहसत्ति।।15।।

अर्थ–पहले परम भक्ति के साथ जिन देव के द्वारा कही गई सामायिक करो। फिर धर्म ध्यान का चिन्तन करो, जिससे सहसा (शक्ति अनुसार) सब पाप क्षीण हो जाता है।

सुत्तत्थधम्ममग्गणवयगुत्तीसमिदिभावणाईणं।
जं कीरइ चिंतवणं धम्मझाणं च इह भणियं।।16।।

अर्थ–सूत्रों के अर्थ का, धर्म के स्वरूप का, चौदह मार्गणाओं का, व्रतों का, गुप्ति, समिति, बारह भावना आदि का जो विचार किया जाता है उसे यहाँ धर्मध्यान कहा है।

जीवाइ जो पयत्था झायव्वा ते तहट्ठिया चेव।
धम्मझाणं भणियं रायद्दोसे पमुत्तूण।।17।।

अर्थ–राग, द्वेष को त्याग कर जीवादि पदार्थ जिस रूप में स्थित हैं उन्हें उसी रूप में विचारना चाहिए, इसे धर्मध्यान कहा है।

झाएह तिप्पयारं अरुहं कम्मिंधणाण णिद्दहणं।
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं गुरुपसाएण।।18।।

अर्थ–अपने नाभिकमल के मध्य में स्थित कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाले अर्हन्त का ध्यान तीन प्रकार से करना चाहिए। यह ध्यान गुरु की कृपा से होता है।

णियणाहिकमलमज्झे परिट्ठियं विप्फुरंतरवितेय।
झाएह अरुहरूवं झाणं तं मुणह पिंडत्थं।।19।।

अर्थ–अपने नाभिकमल के मध्य में स्थित चमकते हुए सूरज के तेज युक्त अर्हन्त के स्वरूप का ध्यान करो। उसे पिण्डस्थ ध्यान जानो।

झायह णियकरमज्झे भालवले हियचकंठदेसम्मि।
जिणरूवं रवितेयं पिंडत्थं मुणह झाणमिणं।।20।।

अर्थ–अपने कर के (हाथ के) मध्य में, मस्तक पर, हृदय देश में, कण्ठ देश में सूर्य के समान तेज युक्त जिनरूप का ध्यान करो। इसे पिण्डस्थ ध्यान जानो।

अट्ठटमवग्गचउत्थं सत्तमवग्गस्स वीयवण्णेण।
अक्कंतमुवरि सुण्णं सुसंयुयं मुणह तं त्वचं।।21।।

अर्थ–अष्टम वर्ग का चतुर्थ अक्षर 'ह' उसे सप्तम वर्ग के दूसरे अक्षर 'र' से आक्रान्त करो। ऊपर शून्य रखो। इन सबको अच्छी तरह संयुक्त करो 'हँ' इसे तत्त्व जानो।

एयं च पंच सत्त य पणतीसा जहकमेण सियवण्णा।
झायह पयत्थझाणं उवइट्ठं जोयजुत्तेहिं।।22।।

अर्थ–योगियों के द्वारा उपदिष्ट यथाक्रम से एक, पाँच, सात और पैंतीस अक्षर के मंत्रों का ध्यान, पदस्थ ध्यान है। इसका नित्य अभ्यास करो।

मुणिसंखा पंचगुणा खणवाई तहय पवण गयणंता।
एदे च धवलपण्णा कायव्वा झाणमग्गेण।।23।।

अर्थ–पञ्च परमेष्ठी के वाचक अक्षरों के द्वारा श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार धवल प्रज्ञा के द्वारा एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए।

णिसिऊण पंचवण्णा पंचसु कमलेसु पंच ठाणेसु।
झाएह जहकमेण पयत्थझाणं इमं भणियं॥24॥

अर्थ–पाँच स्थानों में पाँच कमल स्थापित करके और उन पर पाँच अक्षर स्थापित करके क्रम से उनका ध्यान करो। यह पदस्थ ध्यान कहा है।

सत्त्क्खरं च मतं सत्तसु ठाणेसु णिससु सियवण्णं।
सिद्धसरूवं च सिरे एयं च पयत्थझाणुत्ति॥25॥

अर्थ–सात अक्षर के मन्त्रों को श्वेतवर्ण के रूप में सात स्थानों में स्थापित करो और सिर पर सिद्ध स्वरूप स्थापित करके ध्यान करो। यह भी पदस्थ ध्यान है।

अट्ठदलकमलमज्झे अरुहं वेढेह परमवीयेहिं।
पत्तेसु तह य वण्णा दलंतरे सतवणा य॥26॥
गणहरवलयेण पुणो मायावीएण धरयलक्कंते।
जं जं इच्छह कम्मं सिज्झइ तं तं खणद्धेण॥27॥

अर्थ–आठ दल वाले कमल के मध्यम में कर्णिका पर 'अर्हं' स्थापित करके उसे परं बीजाक्षरों से वेष्टित करो तथा आठ वर्गों से अ, क, च, ट, त, प, य, श अक्षरों को स्थापित करो। आठ पत्तों पर सात अन्तरालों में ण मो अ, र, हं, ता, णं इन सात वर्णों को स्थापित करो। उन्हें गणधरवलय से तथा माया बीज 'हीं' से वेष्टित करके ध्यान करो। तुम जिस काम की इच्छा करोगे वह आधे क्षण में ही सिद्ध हो जाएगा।

घणघायिकम्महणो अइसइवरपाडिहेरसंजुत्तो।
झाएह धवलवण्णो अरहंतो समवसरणत्थो॥28॥

अर्थ–प्रगाढ़ घातिकर्मों को नष्ट कर देने वाले 34 अतिशयों से तथा आठ प्रतिहार्यों से संयुक्त, धवल वर्ण ऐसे समवशरण में स्थित अरहन्त का ध्यान करना चाहिए।

अप्पातिविहपयारो बहिरप्पा अंतरप्प परमप्पा।
जाणह ताण सरूवं गुरुवएसेण किंबहुणा॥29॥

अर्थ–आत्मा के तीन प्रकार हैं–बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, गुरु के उपदेश से उनका स्वरूप जानो।

भयमोहमाणसहिओ रायद्दोसेहि णिच्च संतत्तो।
विसएसु तहागिद्धो बहिरप्पा भण्णए एसो॥30॥

अर्थ–जो मद, मोह और मान से सहित है, नित राग, द्वेष से संतप्त रहता है तथा पांच इन्द्रियों के विषयों में अति आसक्त रहता है, उसे बहिरात्मा कहते हैं।

धम्मझाणं झायदि दंसणणाणेसु परिणदो णिच्चं।
सो भण्णइ अंतरप्पा लक्खिज्जइ णाणवंतेहि॥31॥

अर्थ–जो धर्मध्यान में लीन रहता है नित्य दर्शन-ज्ञानरूप परिणत रहता है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। ज्ञानी पुरुष ही उसे पहचानते हैं।

दुविहो तह परमप्पा सयलो तह णिक्कलोत्ति णायव्वो।
सयलो अरुहसरूवो सिद्धोपुण णिक्कलो भणिओ॥32॥

अर्थ–परमात्मा के दो भेद सकल परमात्मा और निकल परमात्मा जानना, अर्हन्त स्वरूप सकल परमात्मा हैं और सिद्ध निकल परमात्मा हैं।

जरमरणजम्मरहिओकम्मविहीणो विमुक्कवावारो।
चउगइगमणागमणो णिंरजणो णिरुवमो सिद्धो॥33॥

अर्थ–जरा, मरण और जन्म से रहित, आठ कर्मों से विहीन, सब प्रकार के व्यापार से मुक्त, चारों गतियों में आने-जाने से मुक्त, अन्तर्मल से रहित और जिनकी कोई उपमा नहीं है, ऐसे सिद्ध परमात्मा होते हैं।

परमट्ठगुणेहिं जुदो अणंतगुणभायणो णिरालंबो।
णिच्छेओ णिब्भेओ अणंदिदो मुणह परमप्पा॥34॥

अर्थ–सम्यक्त्व आदि आठ उत्कृष्ट गुणों से युक्त किन्तु उन्नत गुणों का भण्डार परमात्मा को जानो। वे किसी बाह्य आलम्बन से रहित हैं, उनका छेदन भेदन संभव नहीं है तथा वे आनन्द स्वरूप हैं।

अप्पा दिणयरतेओ णाणमओ णाहिकमलमज्झत्थो।
णिचिंतो णिद्दंदो झायव्वो झाणजुत्तीए॥ 35॥

अर्थ–नाभिकमल के मध्य में विराजमान करके सूर्य के समान तेज वाले ज्ञानमय, आत्मा को चिन्ता और द्वंद्व रहित होकर ध्यान करना चाहिए।

पाहाणम्मि सुवण्णं कट्ठे अग्गि विणा पओएहिं।
ण जहा दीसंति इमो झाणेण विणा तहा अप्पा॥36॥

अर्थ–जैसे पाषाण में स्वर्ण और काष्ठ में आग रहती है किन्तु प्रयोग के बिना दिखाई नहीं देते हैं। वैसे ही ध्यान के बिना इस आत्मा के दर्शन नहीं होते।

किं बहुणा सालंबं झाणं परमत्थएण णाऊणं।
परिहरह कुणह पच्छा झाणब्भासं णिरालंबं॥37॥

अर्थ–अधिक कहने से क्या? परमार्थ से सालम्बन ध्यान को जान कर करो। पीछे उसे त्याग कर निरालम्ब ध्यान का अभ्यास करो।

जह पढमं तह विदियं तदियं णिस्सेणियव्व चडमाणो।
पावइ समुच्चठाणं तह जोई थूलदो सुण्णं॥38॥

अर्थ–जैसे सीढ़ी पर चढ़ता हुआ मनुष्य पहली, दूसरी, तीसरी सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते सबसे ऊँचे स्थान पर पहुँच जाता है। वैसे ही योगी स्थूल ध्यान का अभ्यास करते-करते शून्य स्थान को प्राप्त होता है।

सुण्णझाणे णिरुओ चइगयणिस्सेसकरणवावारो।
परिरुद्धचित्तपसारो पावइ जोई परं ठाणं॥39॥

अर्थ–जो योगी शून्य ध्यान में लीन होता है, उसका सब इन्द्रियों का व्यापार छूट जाता है तथा चित्त की चञ्चलता रुक जाती है। वह उत्कृष्ट स्थान मोक्ष को प्राप्त करता है। अर्थात् समस्त इन्द्रिय व्यापार के त्यागने पर और मन की चञ्चलता के रुक जाने पर ही शून्य ध्यान होता है।

सुण्णं च विभिहभेयं भणियं बुहेंहि गयणमवियप्पं।
तह दव्वपज्जभावं महहयारं च सिररहियं॥40॥

अर्थ–शून्य ध्यान के अनेक भेद विद्वानों ने कहे हैं। निर्विकल्प ध्यान शून्य ध्यान है तथा द्रव्यपर्याय रूप महान आचार व सिर रहित है?

रायईहिं विमुक्कं गयमोहं तत्तपरिणदं णाणं।
जिणसासणम्मि भणियं सुण्णं इय एरिसं मुणह॥41॥

अर्थ–जो रागादि से रहित, मोहरहित, तत्त्वरूप परिणत ज्ञान है उसे जिनशासन में शून्य कहा है। अर्थात् शून्य से मतलब विचारों से शून्य नही है किन्तु रागादि विकल्पों से शून्य कहा है।

इंदियविसयदीदं अमंतंतंतं अधेयधारणयं।
णह सरिसंपिण गयणं तं सुण्णं केवलं णाणं॥42॥

अर्थ–जो इन्द्रियों के विषयों से रहित हैं, जिसमें न कोई मंत्र तंत्र है न ध्येयश और धारणा है, जो आशा के आकाश के समान होते हुए भी आकाश रूप नहीं है वह शून्य केवलज्ञान है।

णाहं कस्स वितणओण कोवि मे अत्थि अहं च एगागी।
इय सुण्ण झाणणाणे लहेइ जोई परं ठाणं।।43।।

अर्थ–न मैं किसी का पुत्र हूँ और न ही कोई मेरा है। मैं अकेला हूँ। इस प्रकार के शून्य ध्यान रूप ज्ञान के होने पर योगी परम स्थान को प्राप्त करता है।

मणवयणकायमच्छरममत्ततणुधणकणाइसुणणोऽहं।
इय सुण्णझाणजुतो णो लिप्पइ पुण्णपावेण।।44।।

अर्थ–मेरे न मन है, न वचन है, न शरीर है। मैं ईर्ष्या-द्वेष, ममत्व, शरीर, धन के लेश आदि से भी शूय हूँ। इस प्रकार शून्य ध्यान में लीन योगी पुण्य-पाप से लिप्त नहीं होता।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदणगुणोहमेकोऽहं।
इयं झायंतो जोइ पाइव परमप्पयं ठाणं।।45

अर्थ–शुद्ध आत्मा शरीर प्रमाण है, ज्ञानी है, चैतन्य-गुण का भण्डार है, ऐसा मैं एकाकी हूँ। ऐसा ध्यान करने वाला योगी परमात्मापदरूप स्थान को प्राप्त करता है।

भमिदे मुणवावारे भमंति भूयाइ तेसू रायादि।
ताण विराम विरमदि सुचिरं अप्पा सरूवम्मि।।46।।

अर्थ–मन के व्यापार के भ्रमण करने पर अर्थात् मन के विषयों में चंचल होने पर प्राणी भ्रमित होते हैं। उनमें इष्ट-अनिष्ट विषयों के प्रति राग-द्वेष उत्पन्न होता है। उनके रुकने पर आत्मा अपने स्वरूप में चिरकाल के लिए विराम ले लेता है अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है।

अब्भंतरा य किच्चा बहिरत्थसुहाइ कुणह सुणणतणुं।
णिच्चिंतोतह हंसो पुंसो पुण केवली होई।।47।।

अर्थ–बाह्य पदार्थों से होने वाले सुख, ज्ञान, आदि को अभ्यन्तर करके अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख से सम्पन्न होकर शरीर से शून्य हो जाओ।

अर्थात् शारीरिक सुखादि की ओर से एकदम अपनी दृष्टि को हटा लो। ऐसा होने पर चिन्ता रहित श्रेष्ठपुरुष केवलज्ञानी हो जाता है।

जं परमप्पय तच्च्य तमेवविसकामत्तत्तमिह भणियं।
झाणविसेसेण पुणो णायव्वं गुरुपसाएण॥48॥

अर्थ–जो परमात्मपदरूप तत्त्व है उसे ही यहाँ निष्काम तत्त्व कहा है। उसे गुरु की कृपा से ध्यान विशेष के द्वारा जानना चाहिए।

कामंधो मदमत्तो इंदियलुद्धो सहावदो लाओ।
जइ पुण तं पयडत्थं अक्खिवइ तहिम्मि खुप्पेइ॥49॥

अर्थ–जो कामान्ध है, मद में चूर है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त है, स्वभाव से चंचल है वह यदि इस पर आक्षेप करता है तो संसार समुद्र में डूबता है।

अंतज्जोई कमलं बिंदु णादं च तह च चउभेयं।
अण्णं चिय विण्णाणं सव्वं भवकारणं भणियं॥50॥

अर्थ–अन्तर्ज्योति, नाभिकमल, बिन्दु और चार प्रकार का नाद ये सब भेद से अतिरिक्त अन्य विज्ञान संसार का कारण कहा है।

वयणियमसीलसंजमगुत्तीओ तह य धम्मरणाइं।
लब्भंति परमझाणे अण्णं चि य जं च दुल्लहयं॥51॥

अर्थ–व्रत, नियम, शील, संयम, गुप्ति तथा दस धर्म रूप रत्न, ये सब तथा अन्य भी जो अत्यन्त दुर्लभ हैं वह सब परम ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात् परम ध्यान में लीन होने से व्रतादि सभी प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि ध्यान के समय मन अत्यन्त एकाग्र होने से किसी ओर नहीं जाता।

णासाजोई जीहा अदंसण पंच तिण्णि एयाई।
घोसा सवणे सत्त य चंदाच्छिद्द मि दह दिवहा॥52॥

अर्थ–नाड़ी चक्र में पाँच तत्त्व होते हैं–पृथ्वी, जल, मरुत, अग्नि और गगन। एक-एक में क्रम से घटिका पर्यन्त वायुसंचार होता है। यह इस गाथा का शब्दार्थ है।

खिदिजलमरुहवि गयणं णाड़ीचक्कंमि पंच तत्ताइं।
एक्कोक्कं चि य घडियं कमेण पवहंति उदयाओ॥53॥

उड्ढं वहदिय आगी अहो जलं तह तिरिच्छओ पवणो।
मज्झम पुढवि य फुहई णहो वि सव्वंपि पूरत्तो॥54॥ (युग्मम)

अर्थ–ऊपर अग्नि तत्त्व, नीचे जल तत्त्व, तिरछे पवन तत्त्व है और मध्य में पृथ्वी तत्त्व प्रवाहित होता है और आकाश तत्त्व सबको पूरता है।

अग्गि तियंगुलमाणो छंगुल पवणो य पुहइतच्च पुणो।
चउवीसंगुलमाणो य वहइ सलिलं च तत्तम्मि॥55॥ (युग्मम)

अर्थ–अग्नि तीन अंगुल प्रमाण है, पवन छह अंगुल प्रमाण है, पृथ्वी तत्त्व चौबीसों अगुल प्रमाण है, सलिल तत्त्व प्रवाहित होता है।

कण्ठुद्धेण हुसासो णाही उड्ढमि मुणइ तह पवणा।
जाणुद्धं तह पुहई सलिलं चिय पाउदड्ढंति॥56॥

अर्थ–कंठ के ऊपर रहे वह श्वास वायु, नाभि के ऊपर रहे उसे पवन (वायु) जानो। जानु के ऊपर पृथ्वी का तत्त्व है और पैर से ऊपर जल तत्त्व है।

अग्गि तिकोणो रत्तो किण्हो य पहंजणो तहा वित्तो।
चउकोणं पिय पुहवी सेय जलं सुद्धचन्दाभं॥57॥

अर्थ–अग्नितत्त्व त्रिकोण और लाल होता है। प्रभंजन कृष्ण वर्ण और वृत्त होता है। पृथ्वी तत्त्व चौकोर होता है और जल तत्त्व शुद्ध चन्द्र के समान सफेद होता है।

पुहई सलिलं च सुहं वामा णाडी य पवहमाणमिदं।
तेयं पवणं व णहं असुहाई इमाइ तत्ताई॥58॥

अर्थ–ज्ञानार्णव में कहा है वामा नाड़ी प्राणियों के लिए हित कारक है और दक्षिण नाड़ी अनिष्टकारक है। इस प्रकार नाड़ी संचार के द्वारा योगी शुभाशुभ जान लेते हैं। यही भाव उक्त गाथा का प्रतीक होता है।

इडपिंगलाण पवणं सीउण्हं तत्त परमयं णाओ।
ये जाउण सुहमसुहं जीवियमरणं च जाणेइ॥59॥

अर्थ–इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ शरीर में होती हैं। इनके द्वारा योगी शुभाशुभ जीवन मरण को जानते हैं। यह उक्त गाथा का भाव प्रतीत होता है।

तडिदंबुबिन्दुतुल्लं जीविय तह जोवणं धणं धण्णं।
णाऊणमणिं सव्वमथिरं परमप्पबुद्धीए।।60।।

अर्थ–परमात्मबुद्धि के द्वारा जीवन, यौवन, धन, धान्य इन सबको बिजली और जल के बुलबुले के समान अस्थिर जानो।

णियमणपड़िबोहत्थं परमसरूवस्स भावणणिमित्तं।
सिरिपउमसिंहमुण्णिा णिम्मवियं णाणसारमिणं।।61।।

अर्थ–अपने मन को प्रतिबुद्ध करने के लिए और परमात्मा के स्वरूप की भावना के निमित्त श्री पद्मसिंह मुनिराज ने इस ज्ञानसार नामक प्रकरण को रचा।

सिरिबिक्कमस्स काले दससमयछासीजुयंमि वहमाणे।
सावणसियणवमीए अंतयणरम्मि कयमेव।।62।।

अर्थ–श्री विक्रम संवत् एक हजार छयासी में श्रावण शुक्ला नवमी के दिन अम्वक नगर में इसकी रचना की है।

परिमाणं च सिलोया चउहत्तरि हुंति णाणसारस्स।
गाहाणं च तिसट्ठी सुललियबन्धेण रइयाणं।।63।।

अर्थ–अति ललित प्रबंधरूप से रचित ज्ञानसार की गाथाओं का प्रमाण त्रिसेठ है, किन्तु संस्कृत के अनुष्टुप श्लोकों के अक्षरों के परिणाम के अनुसार इसके श्लोकों का प्रमाण चौहत्तर है।

।।इदि णाण सायर गंथं।।

चारित्र चूड़ामणि आचार्य कुन्थुसागर जी कृत

5-y?kq'kkafrlq/kkfla/kq

श्रीदं नत्वा निजं भक्त्या, पूर्वाचार्यान् सुखप्रदान्।
शान्त्यै शांतिसुधर्मौ च, दीक्षाशिक्षावरप्रदौ।।1।
लघुशांतिसुधासिंधुर्ग्रंथोऽयं सुखशांतिदः।
लिख्यते स्वात्मतृप्तेन, कुन्थुसागर-सूरिणा।।2।।

अर्थ—समवसरणादि बहिरंगलक्ष्मी और अनंतज्ञानादि अंतरंग लक्ष्मी को देने वाले, कषायविजयी जिनेन्द्र भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। सच्चा सुख देने वाले समंतभद्र आदि पूर्वाचार्यों एवं शांति प्राप्ति के लिए दीक्षा गुरु श्री आचार्य शांतिसागर जी और शिक्षा गुरु श्री सुधर्म सागर जी महाराज को नमस्कार करके आत्म रस का रसिक तृप्त होकर लिखता हूँ।

कस्यापि जीवस्य कदापि नाशो,
भावी न भूतो भवतीह लोके।
कौ केवलं स्यात्परिवर्तनं हि,
दिनादिरात्रेरिव सर्वसृष्टेः।।3।।

अर्थ—किसी भी जीव का नाश नहीं होता, और कभी न हुआ था, न कभी होगा, जैसे दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के बाद फिर दिन का उदय हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार में सारी सृष्टि का केवल परिवर्तन होता है।

ज्ञात्वेति मृत्योश्च भयं प्रमुच्य,
वियोगदुःख हि तथा परेषाम्।
स्याच्छुद्धचिद्रूपपदाधिकारी,
स्वस्थस्तवात्मापि भवेत्प्रपूज्य।।4।।

अर्थ—ऐसा जानकर, मृत्यु का भय और इष्ट जनों के वियोग जन्य दुःख को छोड़कर शुद्धचैत्न्य पद के अधिकारी बनो, जिससे कि तुम्हारी आत्मा स्वरूपस्थ होकर पूज्य बन जावे।

धर्मोऽस्ति प्राणिमात्राणामहिंसैवाभयप्रदः।
अतः सद्विश्वशान्त्यै स, पालनीयो मुदाऽखिलैः॥5॥

अर्थ–सब प्राणियों को अभय देने वाला एक अहिंसा ही धर्म है, इसी से विश्व में सच्ची शान्ति हो सकती है, इसको हर्ष से सबको पालना चाहिए।

स्वात्मवत् प्राणिमात्राणां, प्रयत्नात्परिरक्षणम्।
अहिंसा परमो धर्मः, लोकेस्मिन् शांतिदायकः॥6॥

अर्थ–अपनी आत्मा की भांति प्राणीमात्र को चाहिए, कि वे सभी जीवों की चाहे वे सूक्ष्म हों वा स्थूल, प्रयत्न पूर्वक रक्षा करें वही सज्जनों का प्रिय, शांति को देने वाला समस्त लोक में प्रसिद्ध ''अहिंसा धर्म'' है, दूसरा नहीं।

रोचते स्वात्मने यद्यज्ज्ञेयं तत्तत्परात्मने।
अतएव परेभ्योऽपि, देयं वस्तु सुखप्रदम्॥7॥
सर्वजीवसमत्वान्न कार्यं कस्यापि पक्षकम्।
सर्वविश्वसुखी यस्मात्सदा स्यान्मंगलं भुवि॥8॥

अर्थ–जो वस्तु अपने लिए रुचिकर अर्थात् हितकारी है, वही दूसरों को भी जरूरी है, ऐसा जानना, इसलिए हमेशा दूसरों को भी सुखदायक वस्तु देनी चाहिए और सब जीव समान हैं, इसलिए रागद्वेष पूर्वक किसी का पक्षपात नहीं करना चाहिए। तभी सर्व जगत् सुखी और भूमण्डल में आनन्द मंगल हो सकते हैं।

आरम्भोद्योगजा हिंसा, वा संकल्पविरोधजा।
यावन्न त्यज्यते पूर्णोऽहिंसा धर्मः भवेन्न कौ॥9॥
शक्नोति श्रावकस्त्यक्तुं, नारंभोद्योगजा यदि।
विरोधजां तथावश्यं, शक्तः संकल्पजां सदा॥10॥
पूर्वोक्ता सर्वहिंसा हि, त्यक्त्वा वाक्कायचेतसा।
भवेयुः साधवः स्वस्था, आशीरस्ति गुरोरिति॥11॥

अर्थ–आरंभी, उद्योगी, संकल्पी और विरोधी चारों प्रकार की हिंसा जब तक न छोड़ी जावे तब तक पूर्ण अहिंसा धर्म नहीं होता, यदि अणुव्रती, गृहस्थ, आरंभी और उद्योगी हिंसा को न छोड़ सके तो विरोधी तथा संकल्पी हिंसा को अवश्य छोड़ना चाहिए। ऊपर कहीं सर्व प्रकार की हिंसा को मन, वचन, काय से त्याग कर साधुगण स्वस्थ अर्थात् सच्चे सुखी होवें, ऐसा परम दयालु गुरु का शुभाशीर्वाद है।

नानामतिविधिं त्यक्त्वा हयहिंसाधर्मशिक्षणम्।
देयं तं प्राणिमात्रेभ्यः, स्यात्कौ शान्तिपर्यंत् सदा॥12॥
वा स्वात्मनिन्दनाद्भक्तया, परस्तोत्रेण व सदां
स्वगुणाच्छादनात्कीर्तिः, परेषां गुणवर्णनात्॥13॥

अर्थ–नाना मतों के भिन्न-भिन्न विधि विधान को छोड़कर प्राणीमात्र को, अहिंसा धर्म का शिक्षण और सुख देना चाहिए तथा आत्मनिंदा और परप्रशंसा, अपने गुणों का आच्छादन और दूसरे के गुणों का प्रकाशन भी शान्ति का परम पवित्र साधन है और सच्ची कीर्ति का उपाय है।

क्रोधस्य मानस्य भयस्य माया,
वृद्धेश्च हेतुः कथितः प्रलोभ।
ज्ञात्वेति कस्यापि शुभाशुभस्य,
लोभो न कार्योऽखिलदुःखदः कौ॥14॥
लोभप्रणाशन्न कदापि लोके,
क्रोधादिमायावशंता प्रयाति।
क्रोधादिमायावादिद्ध-सुखं च याति,
स्वात्माऽति शुद्धोऽप्यजरामरः कौ॥15॥

अर्थ–क्रोध, मान, भय और माया की वृद्धि का कारण लोभ है, ऐसा जानकर दुनिया में दुःखों को देने वाला किसी भी तरह की शुभाशुभ वस्तु का लोभ नहीं करना चाहिए। लोभ का नाश हो जाने से क्रोध, मान, माया के वश में नहीं हो सकता और क्रोधादि के अभाव से निजात्मा अत्यंत निर्मल स्वस्थ और संसार में अवश्य सुख को प्राप्त करेगी।

अज्ञानतः स्याद् हृदि लोभजन्म,
समस्तसंतापविवर्द्धवंः कौ।।
ज्ञात्वेति तत्त्यागविधिर्विधेयः,
स्वात्मा यतः स्यादिमलः प्रबुद्धः॥16॥

अर्थ–जगत में संतापों को बढ़ाने वाला लोभ का जन्म, अज्ञान से हृदय में होता है। ऐसा जानकर लोभ के त्याग के त्याग का उपाय करना चाहिए, जिससे अपनी आत्मा निर्मल और अत्यंत जाग्रत हो जावे।

अज्ञानहेतुः प्रबलः प्रणीतः।
खलप्रसंगः सुखशांति लोपी।
विपत्प्रदायी कलहप्रचारी,
ज्ञात्वेति तत्तयागविधिर्विण्धेयः॥17॥

अर्थ–अज्ञानता दुःख का प्रबल कारण है, सुख शांति का नाशक है, विपत्ति को लाने वाला, कलह को बढ़ाने वाला यह दुर्जनों को सहवास है, ऐसा जानकर असत्संगति के त्याग का उपाय करना चाहिए।

सत्संगतः स्यात् स्वधार्थबोधः
सत्सङ्गतः स्याच्च निजात्मशुद्धि।
स्वयं सदा मोक्षरमापतिः स्यात्,
शंका किलोक्ते विषये न कार्या॥18॥

अर्थ–सत्संग से ही आत्मज्ञान या सम्यग्ज्ञान होता है, सत्संग से ही अपनी आत्मा भी शुद्ध होती है और सत्संग से ही क्रमशः अपने आप मुक्ति लक्ष्मी का स्वामी हो जाता है, इसमें जरा भी शंका नहीं करनी चाहिए।

पूर्वोक्तरीतिं सुखशान्तिदात्रीं।
केनाप्युपायेन मुदेति बुद्धवा।
सत्संङ्ग एषः सुखदो विधेयः,
निस्वार्थबन्धुर्भवबन्धभेदी॥19॥

अर्थ–सुख और शांति को देने वाली रीति को, किसी भी उपाय से हर्षपूर्वक भली-भाँति समझकर, सदा सुखदाायक, अकारण हितकारी, संसार के बन्धनों को भिन्न करने वाला यह सज्जनों का संग अवश्य करना चाहिए।

स्वानंदतृप्तः सदसद्विवेकी,
शिवप्रदः सत्पुरुषः कृपाब्धिः।
अन्वेषणात् कौ विरलः क्वचिद्धि,
दृग्गोचरो जायत एव नृणाम्॥20॥

अर्थ–आत्मानंद में सन्तुष्ट, भले बुरे का विवेकी, कल्याणदाता दया का भण्डार, ऐसा सत्पुरुष दुनिया में ढूँढने से कहीं मनुष्य को मिल ही जाता है, अर्थात् संत जन दुनिया में विरल हैं, तो भी ढूँढने पर दुर्लभ नहीं है।

प्रकाशते कौ च शशीति सूर्यो,
भ्रमन्सदा सर्वहितार्थमेव।
वृष्टिः पतन्तीति करोति शान्तिं,
वायुर्भ्रमन्नेव करोति शुद्धिं॥21॥
स्वानन्दमूर्तिः सुगुरुः कृपाब्धिः,
भ्रमन्करोत्येव च विश्वशान्तिम्।
ज्ञात्वेति भक्त्या सुगुरोः स्वसिद्धयै,
करोतु सेवां शरणं प्रयातु॥22॥
पश्चात्स्वयं सद्गुरुभिः समं हि,
स्वानन्दचर्यां कुरुते हितार्थम्।
सद्ग्रंथकर्तुर्वरकुन्थुनाम्नो,
भावोऽस्ति सूरेः सदसद्विचारी॥23॥

अर्थ–जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, सर्व प्राणियों के लिए भ्रमण करते हुए प्रकाश करते हैं, बरसते हुए मेघ शांति विस्तार करते हैं, बहती हुई वायु शुद्धि का संचार करती हैं। उसी प्रकार, निजानन्द की मूर्ति, कृपा के सागर सद्गुरु भ्रमण करते हुए विश्व में शांति करते हैं। ऐसा जानकर अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए। उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिए। फिर उन सद्गुरु के साथ आत्महित के लिए आत्मानंद की चर्चा करनी चाहिए। ऐसा इस ग्रंथ के कर्त्ता ऋषिवर श्री कुन्थुसागराचार्य का स्वपर विवेकी अभिप्राय है।

रवानन्दभोक्ता गुरुणा समं हि,
स्वानन्दचर्या करणेन शांतिः।
शुद्ध स्तवात्मा सदसद्विवेकी,
भवत्यवश्यं स्वपदे निवासी॥24॥

अर्थ–आत्मानन्द के भोगी गुरु के साथ निजानन्द की चर्चा करने से निश्चयपूर्वक शांति होती है और इससे तेरी आत्मा की निर्मल, सद् असद्विवेकी और अवश्य ही निजपद की निवासी हो जायेगी।

ग्रन्थं ह्यमुं भक्तित एव भव्यायाः,
पठन्ति ये केऽपि नमन्ति नित्यम्।
सुखप्रदं वांछितदं सुवस्तु,
लब्ध्वा लभन्ते ह्यजरामरत्वम्॥25॥

अर्थ–जो भव्य प्राणी इस ''लघु शांतिसुधासिंधु'' नामक ग्रंथ को हमेशा भक्ति से पढ़ते हैं और प्रणाम करते हैं वे सुखदायक मनोवांछित वस्तु को प्राप्त कर जन्म जरामरण से भी मुक्त हो जावेंगे।

शांतिसिंधोः सुधर्मस्यं ग्रंथोऽयं सुप्रसादतः।
लिखितः स्वात्मनिष्ठेन, कुन्थुसागरसूरिणा॥26॥

अर्थ–यह प्रस्तुत ग्रंथ श्री शांतिसागराचार्य ओर श्री सुधर्मसागराचार्य की महती कृपा से आत्मनिष्ठ श्री कुन्थुसागराचार्य ने बनाया है।

मोक्षंगते महावीरे, विश्वशांतिविधायवेः।
चतुर्विंशति संख्याते ह्यष्टपटयधिके शते॥27॥
उदयादिपुरे राज्ये धुलेव शुभपत्तने।
पुण्यस्त्रोतसमाकीर्णे, आदि श्वरजिनालये॥28॥
फाल्गुनासितपक्षस्याष्टम्यां शुभतिथौ सतां।
स्वात्मराज्यनिविष्टेन कुन्थुसागरसूरिणा॥29॥
चतुः संघसमं स्थित्वाभव्यानां शांति हेतवे।
लघुशांतिसुधासिंधुः ग्रंथोऽयं रचितः प्रियः॥30॥

अर्थ–विश्वशांति विधायक भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण संवत् 2468 में शुभतिथि फाल्गुन कृष्ण 8 के दिन चतुः संघ सहित आत्मानंद राज्य में प्रविष्ट दिगम्बराचार्य श्री कुन्थुसागर जी ने उदयपुर राज्य के धुलेव नगर में श्री वृषभदेव भगवान् के मंदिर में बैठकर यह परम प्रिय ग्रंथ 'लघु शांति सुधा सिंधु' आत्म शांति के लिए एवं भव्यों की शांति के लिए रचा है।

॥ इति शांति सुधा सिंधु॥

पू.पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट, आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निजअवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग-1
19. योगामृत भाग-2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग-1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग-2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग-1
27. महापुराण भाग-2
28. योगसार भाग-1
29. योगसार भाग-2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्त्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूद्वीप चरित्र
35. आराधनासार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग-1
40. उपासकाध्ययन भाग-2
41. रामचरित्र भाग-1
42. रामचरित्र भाग-2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोष भाग-1
45. आराधना कथा कोष भाग-2
46. आराधना कथा कोष भाग-3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
59. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथ पुराण भाग-1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग-2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग-1
55. धर्मामृत भाग-2
56. पुण्यवर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग-1
64. पुराण सार संग्रह भाग-2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र
68. महीपाल चरित्र

69. जिनदत्त चरित्र
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरलकाव्य
75. धर्म संस्कार भाग-1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रन्थ आराधना
79. निर्ग्रन्थ भक्ति
80. कर्म प्रकृति
81. पूजा-अर्चना
82. नौ-निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
85. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग-2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग (प्रवचन)
66. तनाव से मुक्ति भाग-1
97. कर्म विपाक
98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शान्तिनाथ भक्तामर सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1, 2, 3, 4
105. सप्त अभिषाप
106. दिगम्बरत्व : क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से जिनदर्शन
108. निशभोज त्याग : क्यों?
109. जलगालन : क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्म : क्या, क्यों, कैसे?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन : 1, 2, 3, 4
113. कल्याणी
114. कलम-पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत (प्रवचन)
116. खोज क्यों रोज-रोज
117. जागरण
118. णंदिणंद सुत्तं
119. जय बजरंग बली (प्रवचन)
120. शायद यही सच है
121. डॉक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. मल्लिनाथ पुराण
124. चैन की जिन्दगी (प्रवचन)
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना (प्रवचन)
139. तत्त्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त

141. जीवन का सहारा (प्रवचन)
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्त्वज्ञान तरंगनी
147. जिन कल्पि सूत्रम
148. दु:खों से मुक्ति
149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर चालीसा
152. पुरुषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की (प्रवचन)
155. बोधि वृक्ष
156. शान्तिनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याएं प्रमाणिम समाधान
159. भरतेश वैभव
160. वसुऋद्धि
161. संस्कारादित्य
162. मुक्तिदूत के मुक्तक
163. श्रुत निर्झरी (प्रवचन)
164. जिन सिद्धान्त महोदधि
165. उत्तम क्षमा (प्रवचन)
166. मान महा विष रूप (प्रवचन)
167. तप चाहें सुर राय
168. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
169. निज हाथ दीजे साथ लीजे (प्रवचन)
170. सद्गुरु की सीख
171. परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो
172. रंचक दगा बहुत दु:ख दानी (प्रवचन)
173. लोभ पाप को बाप बखाना
174. सत्यवादी जग में सुखी (प्रवचन)
175. उत्तम ब्रह्मचर्य (प्रवचन)
176. पार्श्वनाथ पुराण
177. गुण रत्नाकर
178. नारी का धवल पक्ष (प्रवचन)
179. आज का निर्णय
180. गुरु कृपा
181. तत्त्व विचारो सारो
182. अजितनाथ विधान
183. त्रिवेणी
184. आईना मेरे देश का (प्रवचन)
185. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
186. मूलाचार प्रदीप
187. न पिटना बुरा है न मिटना (प्रवचन)
188. गुरुवर तेरा साथ

प्रेस में :

190. फर्श से अर्श तक
191. स्वास्थ्य बोधामृत
192. कुछ कलियाँ कुछ फूल
193. प्रभाती संग्रह
194. आदिनाथ विधान
195. मुनिसुव्रतनाथ विधान
196. नेमिनाथ विधान
197. नवग्रह विधान
198. सरस्वती आराधना
199. जैन धर्म की कखग
200. आराधना समुच्चय
201. चार श्रावकाचार
202. पग वंदन
203. श्रद्धा के अंकुर

प.पू. आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के जीवन चरित्र पर आधारित

204. दृष्टि दृश्यों के पार
205. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (प्रेस में)
206. अक्षर शिल्पी
207. समझाया रविन्दु न माना